राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]



— ग्रन्थाङ्क १५ —

श्रीहर्षविरचिता

शृङ्गारहारावली



— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

वि॰ सं॰ २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रू॰

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

– ग्रन्थाङ्क १५ –

श्रीहर्षविरचिता

शृङ्गारहारावली

— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रू० ०

RĀJASTHĀNA PURĀTANA GRANTHAMĀLĀ
Published by the Government of Rajasthan
A Series devoted to the Publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa, Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

★

General Editor
Acharya JINA VIJAYA MUNI, Puratattvacharya
Honorary Member of the German Oriental Society, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona and Gujarat Sahitya Sabha, Ahmedabad.
Honarary Director, Rajasthan Oriental Research Institute.

No. 15

ŚṚṄGĀRAHĀRĀVALĪ

of

SHRI HARSHA

Edited by
Prof. Dr. PRIYABALA SHAH
M. A. Ph. D. (Bombay), D. Litt (Paris)
(Head of the Department of Ancient Indian Culture : Ramanand Arts College, Ahmedabad.)

Rajasthan Oriental Research Institute
Jaipur

1956

श्रीहर्षविरचिता

शृङ्गारहारावली

सम्पादिका

डॉ. प्रियबाला शाह. एम्. ए. पीएच्. डी. (बंबई),
डि. लिट् (पेरिस)

(प्राध्यापिका, रामानन्द आर्ट्स् कॉलेज, अहमदाबाद)

-: प्रकाशक :-

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

संचालक - राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

प्रकाशक -

संचालक - राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, के आदेशानुसार - गोपालनारायण बोहरा ।

मुद्रक -

जयन्ति दलाल, वसंत प्रिन्टींग प्रेस, घीकांटा रोड, अहमदाबाद, और

मुकुन्द के. शास्त्री, इला प्रिन्टरी (वल्लभ मुद्रणालय) पानकोर नाका, अहमदाबाद ।

प्रधान संपादकीय वक्तव्य

★

राजस्थान एवं गुजरात, मालवा आदि प्रदेशोंमें प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके बिखरे हुए एवं जीर्णशीर्ण दशामें जो संग्रह प्राप्त होते हैं उनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन राजस्थानी-गुजराती भाषामें रचित छोटी बडी ऐसी सैंकडों ही साहित्यिक कृतियां उपलब्ध होती हैं जो अभी तक प्रायः अज्ञात और अप्रसिद्ध हैं। विद्वानोंका लक्ष्य प्रायः अभीतक उन्हीं सुप्रसिद्ध और सुज्ञात ग्रन्थोंके अन्वेषण एवं संशोधनकी तरफ रहा है जो यत्रतत्र यथेष्ट परिमाणमें उपलब्ध होते हैं। ग्रन्थोंके संपादन और प्रकाशन के विषयमें भी प्रायः यही प्रथा चली आ रही है। सुप्रसिद्ध और सुज्ञात ग्रन्थोंके सिवा छोटी छोटी एवं प्रकीर्ण रचनाओंके विषयमें विद्वानोंका विशेष लक्ष्य नहीं जाता है और इसलिये अभी तक ऐसी रचनाओंके संपादन-प्रकाशनका मुख्य प्रयत्न प्रायः नहींसा हुआ है। हमारे प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक सामग्रीकी दृष्टिसे इन फुटकर रचनाओंमें जो ज्ञातव्य छिपे पडे हैं उनकी तरफ हमारा लक्ष्य बिल्कुल नहीं गया है-ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्तिकी बात नहीं होगी।

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिरका कार्य प्रारंभ करते समय, हमारा मुख्य लक्ष्य इस प्रकारके प्रकीर्ण साहित्यका अन्वेषण, संग्रह, संरक्षण, संशोधन एवं प्रकाशन आदि करनेका रहा है और तदनुसार, राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला द्वारा ऐसी अनेकानेक साहित्यिक रचनाओंको, सुयोग्य विद्वानों द्वारा शोधित-संपादित कराकर प्रकाशमें रखनेका आयोजन हमने किया है।

संस्कृत और प्राकृत भाषामें रचित मुक्तक-प्रकीर्णक पद्योंके फुटकर संग्रहोंके नाम पद्यावलि, मुक्तावलि, हारावलि, मणिमाला, रत्नमाला, पुष्पमाला आदि रूपमें प्रसिद्ध हैं। कुछ कृतियां पद्योंकी संख्याके अनुसार भी प्रसिद्ध हैं—जैसे पांच पांच पद्योंका संग्रह पंचक, आठ आठ पद्योंका संग्रह अष्टक, १० पद्योंका संग्रह दशक, इस तरह षोडशक १६ पद्योंका, २० पद्यात्मक रचना विंशतिका, २४ पद्यात्मक कृति चतुर्विंशतिका, २५ पद्योंकी पंचविंशतिका, ३० की त्रिंशिका, ३२ की द्वात्रिंशिका, ५० पद्योंके संग्रहवाली रचना पंचाशिका या पंचाशक, ७० पद्योंकी समूहात्मक रचना सप्ततिका एवं सौ पद्योंके संग्रह 'शतक' आदि नामसे उल्लिखित किये जाते हैं।

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालाके १५ वें पुष्पके रूपमें पाठकोंके हाथमें जो ग्रन्थ उपस्थित है वह शृंगारहारावलि भी इसी प्रकारकी एक मुक्तक-पद्योंकी संग्रहरूप संस्कृत रचना है। संस्कृतके भिन्न भिन्न छन्दोंमें, रचे हुए १०१ पद्योंके

इस छोटेसे संग्रहको कर्त्ताने शृंगारहारावलि नामसे अभिहित किया है जिससे इसका विषय भी स्पष्ट ही सूचित हो जाता है। कविने समय समय पर स्फुरित अपनी कल्पनाके अनुसार शृंगाररससे संबन्धित जो मुक्तक पद्य बनाये होंगे उनमेंसे चुने हुए १०१ पद्योंके संकलन रूपमें यह हारावलि ग्रथित की गई है। इस प्रकारके शृंगाररसविषयक १०० पद्योंका समुच्चय महाकवि भर्तृहरिका बनाया हुआ शृंगारशतकनामक संस्कृत साहित्यका एक उत्कृष्ट मुक्तकसंग्रह सुप्रसिद्ध ही है और इसी तरहका महाकवि अमरुकका बनाया हुआ १०० पद्योंका संचयरूप अमरुकशतक नामका सुन्दर काव्यसंग्रह भी सुविश्रुत है। ऐसी ही एक अन्य और उत्तम रचना नागकविकी है जिसे नागशतक या भावशतक भी कहते हैं। कहनेका तात्पर्य है कि इस प्रकारके मुक्तक-पद्योंके संकलन-स्वरूप अनेकानेक साहित्यिक प्रबन्ध उपलब्ध होते हैं जिनमेंसे ऊपर्युलिखित जैसे कुछ एक ही प्रबन्ध अभी तक प्रकाशमें आये हैं।

गुजरात विद्यासभा, अहमदाबादके प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रहमें राजस्थान एवं गुजरातसे प्राप्त ऐसी कई प्राचीन लिखित पोथियां जीर्ण-शीर्ण एवं उपेक्षित दशामें उपलब्ध हैं जिनकी तरफ सहसा विद्वानोंका लक्ष्य आकृष्ट नहीं हो पाता। डॉ. प्रियबाला शाहको रिसर्च स्कॉलरके रूपमें जब इस संग्रहका निरीक्षण करनेका सुयोग मिला तो इनका लक्ष्य इन पोथियोंकी तरफ गया और इनने इनमेंसे प्रस्तुत शृंगारहारावलि, कृष्णगीति, नृत्तसंग्रह, रत्नकोश आदि जैसी कई फुटकर परन्तु साहित्यकी दृष्टिसे महत्त्वकी रचनाओंके विषयमें अपने प्रधान अध्यापक प्रो. रसिकलाल परीखसे जिक्र किया। प्रो. परीखने इन रचनाओंका अध्ययन और प्रतिलिपि आदि करनेकी प्रेरणा की और प्रसंगवश मुझे इससे सूचित किया। प्रतिलिपि और मूल लिखित पोथियोंका अवलोकन करने पर मुझे ये रचनाएं राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित करने योग्य मालूम दी। अतः मैंने सुश्री प्रियबालाको इनका संपादन करनेकी प्रेरणा की जिसके फलस्वरूप यह शृंगारहारावलि अब विद्वानोंके सम्मुख उपस्थित हो रही है।

डॉ. प्रियबाला शाह संस्कृत साहित्यके विविध अंगोंके अध्ययन एवं अन्वेषणमें विशेष रुचि रखती है। इनने बंबई-युनिवर्सिटीकी एम्. ए. की परीक्षा भारतीय प्राचीन इतिहास और संस्कृतिके विषयको ले कर पास की और पीएच्. डी. की डिग्रीके लिये विष्णुधर्मोत्तरपुराणान्तर्गत ललितकला-विषयक प्रकरणोंका परीक्षणात्मक संपादन कर उस पर विवेचनात्मक बृहत् निबन्ध (थिसिस) लिख कर, उक्त युनिवर्सिटीको उपस्थित किया जिसके परिणामस्वरूप इनको युनिवर्सिटीने डॉक्टरेटकी पदवी प्रदान की। प्रस्तुत शृंगारहारावलिका संपादन कार्य समाप्त होने पर था तभी इनने अपने विशेष अध्ययनके लिये फ्रान्सकी पेरिस युनिवर्सिटीमें प्रविष्ट हो कर, वहांके संस्कृतज्ञ प्राध्यापक प्रो. रेनॉ और दुपाँ आदिके मार्गदर्शनमें सूर्यपूजा एवं कृष्णगीति और

नृत्तसंग्रह नामक प्रबन्धोंके आधार पर प्रस्थापित भारतीय संगीत और नृत्य आदि विषयों पर विस्तृत निबन्ध लिख कर पेरिसकी शोरबॉन युनिवर्सिटीसे डी. लिट्. की उच्चतम पदवी प्राप्त की। डॉ. प्रियबालाकी अध्ययन विषयक इस प्रकारकी सुयोग्यताके लिये यहां पर मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन प्रकट करना चाहता हूं।

वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थमालाके प्रारंभसे ही मुझे गुजरात विद्यासभाके अंगभूत प्रो. श्री रसिकलाल परीख, डॉ. श्री हरिप्रसाद शास्त्री, डॉ. श्री जितेन्द्र जेटली, डॉ. सुश्री प्रियबाला शाह, अध्यापक श्री के. का. शास्त्री आदि मेरे प्रिय विद्वन्मित्रमंडलका विविध ग्रन्थोंके संपादन और प्रकाशन आदि कार्योंमें अभीष्ट सहयोग प्राप्त होता रहा है। अतः इसके लिये मैं अपना सविशेष हार्दिक कृतज्ञभाव प्रकट करना चाहता हूं।

अनेकान्त विहार
अहमदाबाद.
आषाढशुक्ल ११. वि. सं. २०१३
(१८-७-५६)

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक
राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर
ज य पु र

PREFACE OF THE GENERAL EDITOR

★

There are still hundreds of old manuscripts big and small in Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa and old Rājasthāni-Gujarāti lying scattered over Rājasthāna, Gujarāta, Mālawā and other regions of our country. Many of these are still unknown and unpublished. Up till now scholars have generally devoted themselves to works which are comparatively bulky, well known and available in great number. The same outlook prevails also amongst publishers of oriental series.

But in addition to those big and well-known works, there are many small ones on a variety of subjects which have not attracted the attention that they deserve. In fact, no major attempt has been made to edit and publish these small works on important subjects. It would be no exaggeration to say that these works which contain important material for the history and culture of our country and which embody not a negligible part of our ancient learning have been mostly neglected, probably because they are in small manuscripts and rare to find.

It has been our endeavour from the very inception of Rājasthāna Oriental Research Institute to search for, collect and preserve mss. of such small works on various subjects and also to edit and publish them. Accordingly we have arranged for critical editions of such works at the hands of competent scholars and their publication in the Rājasthāna Purātana Granthamālā.

The collections of Sanskrit and Prakrit detached verses are known by such names as Padyāvalī, Muktāvalī, Hārāvalī, Maṇimālā, Ratnamālā, Puṣpamālā etc. Some of these collections are also named according to the number of verses collected, e. g. a collection of five, Pañcaka; of eight, Aṣṭaka; of ten, Daśaka; so also a collection of sixteen would be called ṣodaśaka; of twenty, Viṁśatikā; of twenty four, Caturviṁśatikā; of twenty-five, Pañcaviṁśatikā; of thirty, Triṁśikā; of thirty-two, Dvātriṁśikā; of fifty, Pañcāśaka or Pañcāśikā; of seventy, Saptatikā; and so a collection of hundred would be called a Śataka.

Śṛngārahārāvalī, which we are placing in the hands of scholars as the fifteenth number of the Rājasthāna Granthmālā, is a work of this type - a collection of 101 Muktakas or detached verses. The subject-matter of this work is shown by the very title given by the author to this collection of his of 101 verses in different metres. The author seems to have made this necklace of one hundred and one pearl - like verses Muktakas-by selecting the best out of the love-lyrics that he may have composed at different times.

[शृंगारहारावलि–प्रथम तथा अन्तिम पत्रकी प्रतिकृति।

Introduction

I

Critical Notice of the Manuscript

The text edited in the present work is based upon a singl
the possession of Gujarat Vidyasabha, Ahmedabad.

Ms. No. 3601

Name—Śṛṅgārahārāvalī

Author—Śrīharṣa

Material—Paper

Script—Devanāgarī

Extent of the Ms.—13 folios

Size of leaves—9×3 inches

Area of writing-7·5×2·25 inches

Number of lines—9 lines per page, rarely 8 lines

Letters—31 to 33 in each line

Writing—fairly uniform and legible

Age—1733 Saṁvat (i. e. 1676 A. D. Friday 9th June)

Begins—श्रीमकरध्वजाय नमः ॥

काम: कौसुमकार्मुकं करतले कृत्वाधिकं कामिनः ।

Ends—इति श्रीश्रीहर्षविरचिता शृंगारहारावली समाप्ताः । संव. १७३३ आषाढ वदि ८
शुक्रे लिखितं द्विवेदि विद्याधरसुत लक्ष्मीधरेण ।

श्री । श्री । श्री ।

After the colophon, there are two more ślokas in a different hand (see p. 16).

II

The work

I undertook to edit this work, even though there was only one Ms. of it, because of the name of Śriharṣa and the poetic quality of the work. If, however, the manuscript was not on the whole correct, I would have been compelled to give up the attempt.

As will be seen from the text, I have in all made nearly 150 emendations. These are made because the actual readings of the Ms. are in some cases metrically deficient (e. g. ślo. °वनि for °वनी° ślo. 55 जलमण्डली for जलदमण्डलो, ślo. 57 निशाक एष for निशाकर एष, ślo. 73

संभूत for संभृत) in some, grammatically incorrect (e. g. ślo. 34 दयत तमसि, ślo. 63 बीभ्रती, ślo. 65 प्राणेश्वर and in some, did not yield any sense or the sense was not as would be required by the context (e. g. ślo. 7 स्तन्यसूनिह, ślo. 8 वक्षोजन्मत्रिशोरता, ślo. 34 दयत तमसि म, and, ślo. 30 कर्णाटीकुटकोटि)

In making these emendations, it is not possible to exclude altogether the subjective test of propriety. It has been, however, controlled by metre and grammar. In emending the readings, I have mainly relied upon the objective consideration of the confusions and mistakes which are likely to arise by the similarity of letters (like त and न, म and स, घ and ध, च and त्र, क and क्त्र, प and य etc). One cannot say how far these emendations represent the author's text until more mss. of the work are discovered.

III

The Author

Śrīharṣa is a wellknown name in Sankrit literature. Several persons who might have lived centuries apart have borne this name. In fact we know at least two great Harṣas : one the emperor Harṣa of Kanouj (6th cent. A. D.) and the other Śrīharṣa (12th cent. A. D.) a great poet and Vedantist,—the author of Naiṣadhīyacarita and Khaṇḍana-khaṇḍakhādya. Scholars have discovered several other Harṣas[1] also. Our problem is to find out whether our author is to be identified with one of the known Harṣas or whether he is a new find. At the outset I must say that I have not been able to find any decisine evidence which would help one to decide the question. The only thing, therefore, that I could do was to compare Śṛṅgārahārāvalī with, on one side, the works attributed to Harṣa of Kanouj, and on the other, with the Naiṣadhīyacarita of the Vedantist poet Śrīharṣa. Here also I must say that this comparative study has not given me any definite clues. Yet if one is allowed to express one's inclination based upon such a comparative study, one might say that it is more likely that the author of Naiṣadhīya might have composed this work in his earlier years to emulate works like the Amaruśataka. What goes against this hypothesis is the fact that Śriharṣa has not

There are as many as five different individuals, possessing the same appelation Śriharṣa, known to Sanskrit literature : (1) younger brother of the author of the Kāvyapradīpa, (2) the author of the Naiṣadhakāvya, (3) a king of Kashmir to divert whose queen, Somadeva wrote the Kathāsaritsāgara, (4) the father of Muñja and the grand-father of king Bhoja of Dhārā, (5) the king of Sthāneśvara. See P.IX Introduction : Nāgānanda of Śrī Harśa-edited by Karmarkar (Second edition, 1923)

mentioned Śṛṅgārahārāvalī in the references to his works made at the end of the several cantos of Naiṣadhīya. This absence of reference, however, may be explained on the assumption that he might have not regarded this work, presumably of his earlier years, as sufficiently important to stand with his major works.

It is wellknown that Śrīharṣa uses many unusual words in his Mahākāvya. Some of these are sanskritised forms of Deśya words, e. g. the use of the word घुसृण in the sense of saffron(Naiṣ. viii, 80). Now we find that, this word has been used in this work also (ślo. No. 59). In addition, the use of the word नीरंगिका in ślo. 12 is to be specially noted. As I have explained in the notes it is a Sanskritised form of the deśya word णीरंगी or णिरंगी This common tendency of using the Sanskritised forms of the deśya words, by itself, is in no way conclusive; yet if we take this fact along with the other fact that Śrīharṣa and not Harṣa is the proper name of the authors of Naiṣadhīya and Śṛṅgārahārāvalī, we may be permitted the guess that both of them might refer to the same person. This is not good logic, but not so bad as to exclude a guess.

Whoever may be this Harṣa, he seems to be a person very familiar with the regions of Gujarat and Rājasthāna, as is evident from ślo. 12 (नीरंगिका), ślo. 46. (जम्बूतरु) ślo. 73 (माञ्जिष्ठ), ślo. 73 (पटान्तेनावृत्य) The reference to कर्णाटी in ślo. 30 can be explained as something conventional because it is a sort of कविसमय.

The two स्रग्धरा verses at the end of the Ms., describing in one the beautiful Nāgara women of Vaḍanagara and in the other the surpassing beauty of its cowherdesses, clearly indicate that the copy of this Ms. was made at Vaḍanagara. Śrīharṣa, the author of Naiṣadhīya, had a great vogue in Gujarat and its oldest commentaries were written solely in Gujarat.[1] So if Śṛṅgārahārāvalī is the work of the author of Naiṣadhīya it would be no surprise if its only known Ms. was copied at Vaḍanagara. However, as I said above, the evidence is in no way conclusive and the question of the identity of the author of Śṛṅgāra-hārāvalī remains an unsettled problem.

IV

Age- The Age of this work is undoubtedly earlier than this ms. i. e. 1733 Saṁvat (i. e. 1677 A. D.). If it is a work of the author of Naiṣadhīya its date would be, that of Śri Harṣa (12th cent. A. D.) Beyond this we connot say anything further about the age of Śṛṅgāra-hārāvalī.

See Literary Circle of Mahāmātya Vastupāla-B. J. Sandesara (Chap. 5. pages 52-5

I take this opportunity of expressing my sincere thanks to revered Āchārya Śri Jinavijayaji, the Honorary Director, of Rajasthan Puratattva Mandir, Jaipur, who is known for the encouragement he gives to young students in the field of research. I am greatly indebted to him for not only accepting this work for publication in Rajasthan Puratattva Series but for helping me in learning the craft of editing Sanskrit texts.

I am also indebted to Prof. K. V. Abhyankar, Honarary Professor of Sanskrit, B. J. Institute of Learning and Research, Ahmedabad, one of my teachers who guided me in my thesis and taught me how to use Mss. for editing a work.

The Sanskrit commentary in the notes is the work of the wellknown Vaiyākaraṇa Pandit Satyadeva Miśra of the Brahmachārī Sanskrit Pathaśāla-Ahmedabad. I am much indebted to him for this co-operation.

I had the good fortune of discussing the various emendations with Pt. Sukhalalji and Śri. K. K. Shastree.

Lastly, I must not forget to thank Prof. R. C. Parikh, Director of the B. J. Institute of Learning and Research, Ahmedabad, for the valuable assistance that I have received from him in connection with this work.

I am alone, however, responsible for the short-comings of this my first work. Helpful criticism will be thankfully received.

Ahmedabad **Priyabala Shah**

1-7-1952.

छन्दोनुक्रमणिका

अनुष्टुप् S'lo s 6, 7, 16, 36, 37, 50, 51, 66, 67, 68, 82, 83, 91

अनुष्टुप् गायत्रैः ॥२३॥

चतुष्पादित्यनुवर्तते । गायत्रैरष्टाक्षरैः पादैश्चतुष्पाच्छन्दः अनुष्टुप्संज्ञं भवति । [पृ० ६२]

उपजाति S'lo.s. 74, 76.

आद्यन्तावुपजातयः ॥ २३ ॥

आद्यन्ताविति अनन्तरोक्ताविन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः पादावाद्य । [पृ० २९१]

वंशस्थेन्द्रवंशापादयोरपि सङ्करादुपजातयो भवन्ति । [पृ० २९४]

⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

पृथ्वी S'l0. s. 19, 32, 55, 63

पृथ्वी ज्सौ ज्सौ य्लौ ग् वसुनवकौ ॥ १७ ॥

अष्टभिर्नवभिश्च यतिः [पृ० ३३८]

ज स ज स य ल ग

⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ – – ⏑ –

मालिनी S'lo.s. 34, 59.

मालिनी नौ म्यौ य् ॥ १४ ॥

अष्टभिः सप्तभिश्च यतिः । [पृ० ३३४]

⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ – –

मन्दाक्रान्ता – S'lo.s. 33, 40, 41, 54.

मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ त्गौ ग् समुद्रर्तुस्वराः ॥ १९ ॥

चतुर्षु षट्सु सप्तसु च यतिः । [पृ० ३४१]

– – – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ – – ⏑ – –

वसन्ततिलका S'lo.s. 3, 10, 11, 12, 13, 54, 57, 60, 85, 86, 87.

वसन्ततिलका त्भौ जौ गौ ॥ ८ ॥ [पृ० ३२९]

– – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

वंशस्थ—S'lo.s. 23, 24, 25.

वंशस्था ज्तौ ज्रौ ॥ ३४ ॥ [पृ० ३०३]

⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ –

शार्दूलविक्रीडित—S'lo.s. 1, 2, 4, 5, 8, 9, 14, 15, 17, 20, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 35, 38, 39, 42 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 52, 53, 61, 65, 73, 76, 77, 79, 80, 88, 90, 92, 93, 94, 95. 97, 98, 99, 100, 101.

शार्दूलविक्रीडितं म्सौ ज्सौ तौ गादित्यऋषयः ॥ २२ ॥

द्वादशभिः सप्तभिश्च यतिः ॥ [पृ० ३४८]

– – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –

शिखरिणी—S'lo.s. 64, 70, 71, 78.

शिखरिणी यमौ न्सौ भ्लौ गृतुरुद्राः ॥ २० ॥
षट्स्वेकादशसु च यतिः [पृ० ३४२]
⏑ – – – – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ –

स्रग्धरा -S'lo s. 56 62, 72, 75, 84 and two s'lokas of the footnote.

स्रग्धरा म्रौ भ्नौ यौ य् त्रिः सप्तकाः ॥ २५ ॥
सप्तसु सप्तसु सप्तसु च यतिः [पृ ३५०]
– – – – ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ – – ⏑ – –

स्वागता—S'lo.s. 81.

स्वागता र्नौ भ्गौ ग् ॥ २९ ॥ [पृ० २९९]
– ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – –

हरिणी—S'lo.s. 18, 21, 22, 69, 89.

हरिणी न्सौ म्रौ स्लौ गृतुसमुद्र-ऋषयः ॥ १६ ॥
षड्भिश्चतुर्भिः सप्तभिश्च यतिः [पृ० ३३७]
⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ –

From पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्
प्रथमसंस्करणम्—१९२८
(कलिकातामहानगर्यां मुद्रितम्)

शुद्धिपत्रक

	read as	page	ślo.
इयाम्बुलोल्यात्	3a इयाम्बु लोल्यात्	२	१२
प्रेममिलीनतां	प्रेमणि लीमतां	३	१५
After the readings	3a Ms. प्रेमनिभेतकां	३ Footnote	
धृना या	धृताया	५	२७
6	9	५ Footnote	
-ज्ञनिता	-जनितां	८	४६
नेत्थंतनो	नेत्थंतनौ	९	५३
पनर्विचिन्त्य	पुनर्विचिन्त्य	१०	६०
-हमिय	हमियं	१०	६०
कुसुम	कुसुमं	१०	६२
सलग्नाङ्गीं	संलग्नाङ्गीं	११	६९
वेणीरश्मिः	वेणी रश्मिः	११	७०
संतत	संततं	१२	७६
नयोअनं	नयोरञ्जनं	१३	८४
चक्रचन्द्रा	चक्रत्रचन्द्रा	१३	८५

श्रीहर्ष-विरचिता

शृङ्गारहारावली।

श्रीमकरध्वजाय नमः।

कामः कौसुमकार्मुकं करतले कृत्वाधिकं कामिनः
कान्ताकान्तकपोलमण्डलतले पत्रावलीकर्मणि।
युञ्जानो विजयी जगन्ति मदयन् रत्यानुयातोऽनिशं
[1]सौहार्दान्मधुमत्यजन् हि भवतां सौख्याय भूयाद् भुवि ॥ १

षष्ठो जैत्रशरः स्मरस्य जगतां जेतुं [2]जगद्युद्धतो
व्यस्ते सायकपञ्चके विषयिणां चेतः शरव्यं हरन्।
स्वर्गादप्यतिदुर्लभं करतलप्राप्तश्रियं पार्थिवं
शर्मप्रेम तनोतु भूरि भवतां कान्ताकटाक्षोऽक्षयम् ॥ २

[वसन्तकालवर्णनम्]

आधूय [3]चन्दनवनीर्मलयावनीनां
स्थैर्यं भजन्नतितरां कुसुमद्रुमेषु।
ग्लानिं हरन् सुरतजां मधुरो वधूनां
वातः प्रगेऽतरलयत्[4] सरसीतरङ्गान् ॥ ३

कः शाखी सखि यस्य पुष्पमभवत् पुष्पायुधस्यायुधं
छिन्ने तत्र चिरान्निरायुधदशां धत्ते स चित्तेशयः।
इत्थं सा सुभग त्वदीयविरहे कन्दर्पसंतापिता
बाला बालसखीजनेन सहिता क्रीडावने भ्राम्यति ॥ ४

कान्ते त्वन्मुखचन्द्रमा अभिनवो दन्तावली चन्द्रिका
प्रत्यादिष्टमहावियोगतिमिरः कौरङ्गनेत्राङ्कितः।
आश्लिष्यन् कुचचक्रवाकमिथुनं पूर्णेऽपि यस्मिन् मिथस्-
तुङ्गायेत मदेन नेत्रनलिनानन्दं वितन्वन् मुदा ॥ ५

---

1 Ms सौहार्दामधु°. 2 Ms जगदुद्धतो. 3 Ms °वनि° 4 Ms °यन्

विद्रावयति संपूर्णो मानिनीमुखचन्द्रमाः ।
दन्तचन्द्रिकया नूनं वियोगविभवं तमः ॥ ६

स्तनौ [1]स्तनान्तरन्यस्तौ मुखं सुमुखि सन्मुखम् ।
ममोत्सङ्गे तवैवास्तु सुश्रोणि श्रोणिमेखला[2] ॥ ७

[3]कुञ्चत्कोकनदश्रियोर्नयनयोः प्रक्षालयन्ती जलैर्-
[4]वक्षोजन्मकिशोरकौ पितृगृहं गच्छन्त्यपाङ्गेन तु ।
मन्दावर्तितकन्धरा प्रियतमं संवीक्ष्य गुर्वन्तिकाद्-
अन्तर्बाष्पनिरुद्धकण्ठकुहरं कान्ता चिरं रोदिति ॥ ८

कान्ता किं कुरुते, रतेषु रमते कामाक्षया हे सखे,
साकं केन रतं, त्वया, ऽहमिह न, त्वं तत्समीपेऽनिशम् ।
माहारेषु मनोऽवलेपवसनेष्विच्छां हि हित्वा सखी
मव्रीडा भवतो रतैरविरतैरन्तःस्थितैर्वर्तते ॥ ९

सौवर्णनूपुररणच्चरणारविन्दा
श्रोणीभरालसगतिर्मृगशावनेत्रा ।
पीनस्तनी सकलचन्द्रमुखी तनोति
तन्वी न कस्य हृदि मोहमहो महान्तम् ॥ १०

अद्याहमालि तलिने सहिता निषण्णा
वार्तासु तस्य निरता सरलाशयत्वात् ।
कान्तेन कामतरलेन भुजोपपीडम्
आलिङ्ग्य मां किमपि तेन कृतं न जाने ॥ ११

तोयान्तरुल्ललितमीनयुगाभिरूप-
नीरङ्गिकान्तरचरन्नयनं प्रियायाः ।
पास्यामि पार्वणसुधाकरचारुवक्त्रं
शीतं सुगन्धि मरुपान्थ इवाम्बुलौल्यात् ॥ १२

1 Ms स्तन्यस्तनिहन्य°. 2 Ms °लां. 3 Ms किञ्चित्. 4 Ms °रता.

स्वेनैव या वरकुचद्वितयेन नूनं
संवर्म्य सम्यगपि मे हृदयं दयालुः ।
वेगातिदुःसहविदारणदारुणेभ्यः
सा पश्यति प्रियतमा मम मार्गणेभ्यः ॥ १३

रात्रौ यत्सखि कौतुकं समभवच्चित्रं तदाकर्ण्यतां
कान्तेनाद्य समागतेन शयनासीना समालिङ्गिता[1] ।
एतस्मिन् समये रसान्तरमसावासाद्य चेतोहरं
कान्तो मन्मथतामुपागमदहं जाता [2]ततस्तन्मयी ॥ १४

शय्यायां स्मररागमागतवतोः संपन्नयोरावयोः
वार्तालिङ्गनचुम्बनानि बहुधाऽभूवँ[3]स्ततोऽनन्तरम् ।
प्राप्ते प्रेमनिलीनतां सखि परां तन्मन्मयत्वादहो
तद्योग्यं तदहं चकार करणं मद्योग्यमेव प्रियः ॥ १५

आक्रान्तहृदयेनाहं सखे सर्वाङ्गसङ्गिना[4] ।
प्रियेण रतनाथेन मोहितेनाद्य[5] मोहिता ॥ १६

युग्मं कुण्डलयोर्ललौ ललितयोर्लीलामदो [6]दोलया
चापल्यान्मधुरं चकार [7]रशना रावं नितम्बस्थले ।
कामिन्याः करकङ्कणैर्निकणितं कामाहवस्योत्सवे
दृष्ट्वा कान्तपराजयं चरणयोर्लग्नौ चिरं नूपुरौ ॥ १७

प्रणतिनिरतः कान्तः कस्मात् त्वयाद्य न वीक्षितः
प्रियसखि कृतो व्यर्थाभाषः किमेष सखीजनः ।
इयमपि गता[8] पूर्णप्राया पृथुर्हि निशीथिनी
कथय कठिने कीदृक् कोपस्तवैष हृदि स्थितः ॥ १८

विसर्जय सुदुर्जनं गणय सज्जनं मानसे
कृतार्थय सखि प्रियं प्रकुरु तत्र मा विप्रियम् ।
रमस्व पतिसंगता विरम मानतः सांप्रतं
भजस्व मुदम[9]द्भुतां, कलुषतां द्रुतं संत्यज ॥ १९

1 Ms °ताः. 2 Ms °स्ततस्त°. 3 Ms भूय. 4 Ms °नां. 5 Ms °नद्य. 6 Ms °लया. 7 Ms रसनां. 8 Ms गताः पुण्यप्राथाप्रथु°. 9 Ms °मुद्भू°.

आगम्याङ्गणभूमिकां कथमपि प्रायो वियोगातुरा
मार्गं वीक्ष्य विलोचनोत्पलगलल्लोलोदका प्रेयसी ।
नाद्याप्येष समागतः सखि पुनः [1]शून्यं कथं मन्दिरं
यास्यामीत्यभिधाय मोहमभजत् तावत् समेतः प्रियः ॥ २०

त्यज कठिनतामेतामाशु प्रयच्छ शुभां गिरं
सफलय ममाबन्धं मुग्धे विलोकनलीलया ।
चरणशरणं दासीभावं व्रतानुगृहाण माम्
अहह विषमो मानग्रन्थिस्तवाद्य मयीदृशः ॥ २१

करुणमनसा[2]प्युक्तं मुक्तं विलोचनजं जलं
शिरसि विधृतं भूयः पत्युश्चिरं चरणद्वयम् ।
सखि परिहृता व्रीडा क्रीडासखीषु मया मनाक्
तदपि हृदये नासीत् तस्य प्रियस्य दयोदयः ॥ २२

इयं परित्रस्तकुरङ्गलोचना
घनस्तनी चारुमुखेन्दुमण्डला ।
नितम्बिनी मत्तगजेन्द्रगामिनी
कृशोदरी मोहकरी च कामिनी ॥ २३

तवैष वक्त्रेन्दुरखण्डमण्डलः
तनोति कान्तिं नयनाभिरामकीम् ।
प्रिये कुचौ कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरौ
सुवर्णपङ्केरुहकोरकाकृती ॥ २४

इति प्रिये भाषिणि पाणिजैर्मुहुः
स्तनाननं संस्पृशति प्रमोहिते ।
विलोक्य तां मन्मथकेलिलालसां
ययौ सहासोऽथ सखीं सखीजनः ॥ (युग्मम्) २५

1 Ms शून्ये कथं मन्दिरे. 2 Ms °मनंया°.

निर्गत्यावसथादहं सखि बहिस्तिष्ठामि यावत् क्षणाद्
आयातः [1]पुरतः कुतोऽपि ददृशे तावन्मया वल्लभः ।
मातः किं करवाणि पाणिकमले धृत्वा शठो मां हसन्
नीत्वा तत्र जगाम यत्र न जनो जानाति वै कश्चन ॥ २६

बालायाः शनकैर्विलासशयनादुत्थापयन्त्याः[2] पुनः
वस्त्रान्ते क्व नु यास्यसीति रभसादुक्त्का धृता या मया ।
सस्मेरं सकलं सलज्जपुलकं वक्रीकृतभ्रूलतं
यत् पीतं मुखमुन्नमय्य विदुषां नो तद्गिरां गोचरे ॥ २७

अङ्गेऽसङ्गिनि चन्दने न तु कियानेवावलेपो[3] धृतः
कण्ठे मौक्तिकगुण्ठितेन[4] गुणवान् हारोऽपि नारोपितः ।
संगृह्याञ्जनमञ्जिते न नयने रम्ये तया कान्तया
कान्तिं किं कथयामि तद्वपुषि यां कामोऽपि नो विन्दति ॥ २८

पान्थप्राणहरं प्रसूनविलसच्चूतद्रुमाणां वने
श्रुत्वा कोकिलया कृतं विरहिणी रावं निशीथे मुहुः ।
मूर्छामाप पुनर्विबुध्य मनसा पत्युः स्मरन्ती ततो
मुञ्चन्ती नयनाम्बुपूरमरुदत् पान्थप्रिया सस्वरम् ॥ २९

[वसन्तान्तकालवर्णनम्]

कर्णाटीकुच[5]कोटिकेलिविलसल्लीलालसाः[6] कोमलाः[7]
कासारप्रसरत्तरङ्गततिषु क्रीडाकरा[8] मारुताः ।
मल्लीजालविलासलालनकला लोला वसन्तात्यये
वान्ति प्रातरनङ्गसङ्गपरस्त्रीखेदविच्छेदकाः ॥ ३०

[ग्रीष्मकालवर्णनम]

धारायन्त्रतुषारसारकणिकानिर्वारितोष्मोदयं
श्रीखण्डागुरुधूपवासरुचिरं हर्म्यं सचन्द्रोदयम् ।
शय्या पुष्पमयी च चन्दनरसः कर्पूरकस्तूरिका[9]
वासः स्वच्छमकञ्चुका प्रियतमा ग्रीष्मे सुखस्यास्पदम् ॥ ३१

1 Ms पुरूतः. 2 Ms °न्त्या. 3 Ms °वाविलेपो°. 4 Ms °तोन°.
5 Ms °कुट°. 6 Ms °लसा. 7 Ms °मला. 8 Ms °कराः. 6 Ms °कस्तुरिका.

इदं नु किमु नीरजं, भवति तद्धि पङ्केरुहं
किमेष रजनीकरो, ननु स लाञ्छनेनाङ्कितः ।
अथेति मधुराधरं चलविलोचनं सस्मितं
विभाव्य दयितामुखं हृदि दधे मुदं वल्लभः ॥ ३२

मन्दं मन्दं निभृतचरणं [1]पृष्ठतोऽभ्येत्य[2] तस्याः
स्निग्धः सायं करतलयुगेनाक्षिणी मीलयित्वा[3] ।
चुम्बत्येवं विपुलपुलकं गल्लयोरुल्लसन्त्याः
वक्त्रं कामादधरमधुरं प्राणनाथः प्रियायाः ॥ ३३

सुतनु मनसि मानं माऽऽनयानङ्गकेलौ
[4]दयिततममपि त्वं मानयालिङ्गनाद्यैः ।
इति निगदितपत्यौ मानतो नालपन्ती
कठिनकुचतटे सा नेत्रनीरं मुमोच ॥ ३४

आशेयं सखि मे रुणद्धि हृदयं कान्तागमस्यानिशं
धार्यन्तेऽपि मया कथंचिदसवस्तत्संगमाकाङ्क्षया ।
जल्पन्ती पथिकाङ्गनेति सहसा श्रुत्वा स्वरं प्रेयसः
सव्रीडा समुदेव साश्रुनयना सा सस्वरा [5]सस्मरा ॥ ३५

मत्तद्विरदभूपाललीलागतिरमालसा ।
आयाति बाला लोलाक्षी मदालिङ्गनलालसा ॥ ३६
अनङ्गसरसैरङ्गैः सङ्गं संगम्य कान्तया ।
तनोमि रतपाण्डित्यं [6]विलीना निलये सखि ॥ ३७

भूयोभिर्दिवसैरयं प्रियतमो देशान्तरादागतो
विद्वानप्युचितं तनोति जडतामालापमग्नो जनः ।
इत्यालोच्य विलासलोलनयना कामाकुला कामिनी
कान्ते चैव सखीजने निशि तनौ दीपे दृशं संदधे ॥ ३८

1 Ms प्र. 2 Ms °भेत्य. 3 Ms मिलयित्वा. 4 Ms दयत तमसि मे त्वं.
5 Ms सस्मराः. 6 Ms विलीनिलये.

गच्छामीति समुत्थितो निवसतेः कान्तः समालम्बितो[1]
विश्रब्धं परिरब्ध एव हि मया यातस्ततो निर्घृणः ।
यावन्मातरहं विलासशयने सुप्तास्मि चिन्तातुरा
तावत् तेन शनैः समेत्य हसता वक्त्रे चिरं चुम्बिता ॥ ३९

स्निग्धं मुग्धे रचय नयनं विभ्रमालोकदक्षं
वक्त्रे वाणीं रचय सरले कोमलालापरम्याम् ।
अङ्गं रङ्गत्सुललितमथो भावय प्राणनाथे
भूयो भूयो भव तदनुगा त्वं मिथः संकथासु ॥ ४०

कीदृक् कोपो मनसि वसति प्रेमहारी तवायं
पत्यौ नम्रे विरमति न यश्चाटुवाचां विधिज्ञे ।
एभिः कृत्यै[2]रसुजनजनं पूर्णकामं कृथा मा
हर्षोत्कर्षं गमय सुजनं, तं पतिं स्वीकुरुष्व ॥ ४१

गङ्गेयं हरिणाक्षि हारलतिकाक्रान्तस्तनोच्चैस्तटा
कालिन्दी किल कोमला विलसति त्वन्नील[3]रोमावली ।
वक्रोक्त्या च सरस्वती सुललिता सङ्गश्च मध्ये मिथः
एतास्तीर्थमुपागतास्त्वयि परं सेव्या त्वमेवासि मे ॥ ४२

वक्षोजाचलयातिनी च विमला मुक्तालता जाह्नवी
रोमाली ललिता कलिन्दतनया प्रोर्ध्वं प्रयातेव ते ।
मध्ये संगतयोस्तव प्रियतमे सौम्यं तयोः संगमं
संप्राप्तं मनसोऽभिलाषमखिलं सेवे सकामो ह्यहम् ॥ ४३

मातर्मे न परा शरीरपटिमा वक्रा मम भ्रूलता
चेतो भीतिपरायणं मम चले स्थाने न मे लोचने ।
निर्यातौ हृदि गोलकावतितरां गुर्वी नितम्बस्थली
मध्यं क्वापि गतं ममापि चरणौ मन्दां गतिं संश्रितौ ॥ ४४

धैर्यं धेहि निरंतरं स्वहृदये बाले भयं मा कृथाः
स्त्रीणामीदृगपाटवं किल वयःसंधौ समुत्पद्यते ।
तन्त्रज्ञो गदलक्षलक्षणविधौ दक्षो निदाने तथा
वैद्यस्ते दयितः कलासु कुशलस्तस्मै तनुं दर्शय ॥ युग्मम् ४५

1 Ms लिब°. 2 Ms °रम°. 3 Ms °न्मील. 4 Ms °था.

[ग्रीष्मान्तकालवर्णनम्]

वह्निं प्रोषितभर्तृकाहृदि भृशं मन्दोऽपि संदीपयन्
अङ्गग्लानिमनङ्गरङ्गजनिता संभोगिनीनां हरन् ।
सुस्पर्शश्च वने नयन् परिणतिं जम्बूतरूणां फलं
व्यूढप्रौढकदम्बपुष्पसुरभिर्ग्रीष्मान्तवातो ववौ ॥ ४६

[वर्षाकालवर्णनम्]

पान्थानुत्कलिकाकुलानतितरामुत्साहयन् पद्धतौ
कान्तासंगमरागिणां धृतिमतामङ्गे स्मरं जीवयन् ।
[1]जातीकोरकजालमाशु दलयन्नावाति वर्षागमे
मेघोन्मुक्तपृषत्सुसिक्तवसुधागन्धं वहन् मारुतः ॥ ४७

धन्यः कोऽपि [2]पुमानलं जलधरे धीरं मृदङ्गोपमं
ध्वानं कुर्वति गर्वितालिनिवहे गानं परं गायति ।
बध्वा सार्धमगारजालमतुलं संश्रित्य कामालसः
सानन्दं तडिदङ्गनागणकृतं नृत्यं [3]समुद्वीक्षते ॥ ४८

तत्रैव त्वरितं व्रजेति स मम प्राणाधिनाथो यतः
त्यक्तं जीवितमेतया प्रियमपि प्रायो वियोगे तव ।
त्रैलोक्ये त्वति[4]रूपमीदृशमिदं भूयोऽपि नो लभ्यते
प्राणास्तां न परित्यजन्ति सुभग [5]त्वद्ध्यानलग्ना अपि ॥ ४९

[6]पतद्गच्छन्निरालम्बान्[7] रक्षासूनार्तिनः समम् ।
निवेद्य[8]मद्य वो भर्तुः प्राणनाथमिहानय ॥ ५०

नीरं नीरधरानीकेऽनेकधारं निरस्यति ।
निजनाथानता नारी नेत्रनीरजनिर्गतम् ॥ ५१

दोलत्कुण्डलचञ्चलांशुललितैरालोकिताशामुखः
कुर्वन् कङ्कणमेखलाकलकलव्याजेन [9]धीरध्वनिम् ।
घर्मान्ते जलबिन्दुसुन्दरतरस्तापापनोदाय मे
शक्तोऽयं सुपयोधरस्तव घनश्चेतःप्रमोदं नयेत् ॥ ५२

---

1 Ms जाता°. 2 Ms मुमानलं. 3 Ms °द्वीक्ष्यते. 4 Ms त्विति. 5 Ms सुभगन्वध्यान. 6 Ms पतं न. 7 Ms °लम्ब. 8 Ms °माधवो. 9 Ms धीरदृध्वनिम्.

उत्तुङ्गावति[1]पीवरावतितरां पीनौ सुतीक्ष्याननौ
वक्षोजन्म[2]शिलोच्चयौ सखि परं कान्तः कृशाङ्गो मम।
कुर्यां यद्युपरि प्रयाति मरुता नेत्थंतनो विद्यते[3]
तस्यैव प्रतिपालनप्रवणया रात्रिर्मया नीयते ॥ ५३

पीत्वा ममाधररसं दयितो नितान्तं
तृष्णातुरो मनसि यत् प्रमदं प्रपेदे।
मत्तः स तेन सखि मां परिरभ्य वश्यां
मुक्तांशुकां तदुचितं च समाचचार ॥ ५४

इयं जलदमण्डली [5]मलिनतां नभः प्रापयेद्
गृहेऽतिमदनातुरा प्रथमयौवना कामिनी।
अहं तु पथि [6]निष्ठितः कुसुमबाणबाणार्दितः
परं विरहनिर्घृणः[7] कथमहो विधाता विधिः ॥ ५५

[शरत्कालवर्णनम्]

सुस्पर्शाः [8]शालिगोपीविकटकुचतटाभोगयोगाभिरामाः
प्रोन्मीलत्सप्तपर्णप्रसवपरिमलप्राप्तसौभाग्यभोग्याः।
केदारोदारिवारिप्रसृमरकुमुदान्दोलन[9]प्रौढलीलाः
पान्थस्त्रीणामनिष्टाः प्रियरतसुखदाः शारदा वान्ति वाताः॥ ५६

त्वद्वक्त्रशारदनिशाकर[10] एष कान्ते
कान्तांशुजृम्भितविलोचनकैरवोऽपि।
[11]उन्माद्य मामतनु मोहयते निकामं
कुर्यादितो मम मनो मदनाधिरूढम् ॥ ५७

निःश्वासा[12]नामधरमधुरत्वं च धत्से कपोले
संमृज्यन्ते रुचिररचनाः पाणिना यत्र वल्ल्यः।
पत्युर्वाक्यं श्रुतमपि न ते त्वन्मनस्ताप[13]हर्तुर्-
जातावेतौ सजडहृदये मन्युमानौ प्रिये तौ ॥ ५८

---

1 Ms ° उत्तंगावती°. 2 Ms °लिलो°. 3 Ms °ध्यते. 4 Ms जलमण्डली. 5 Ms °लिनितां. 6 Ms °धि. 7 Ms °निघृ°. 8 Ms शाली°. 9 Ms °लनाप्रौ° 10 Ms °निशाक प°. 11 Ms उन्मां मां तनु. 12 Ms °नम°. 13 Ms °हाता.

परिमलमिलितालिर्मालतीपुष्पमाला
सुरभिघुसृणमिश्रं चन्दनालेपनं च ।
तुहिनकिरणरश्मिश्रृङ्खला चापि दोला
शरदि सुखविभूत्यै कामिनी कामलोला ॥ ५९

आदौ बभूव कलहः प्रणयेन कश्चित्
कालः पराङ्मुखतया शयने प्रयातः ।
पत्युर्मुखं सखि मयैक्षि पुनर्विचिन्त्य
तेनातिमात्रमधरेऽहमिय[1] गृहीता[2] ॥ ६०

कोदण्डीयति मार्गणीयति [3]लसल्लोलं कृपाणीयति
प्रत्यञ्चीयति चेषुधायति तथा सोल्लास[4]पाशीयति ।
भ्रूवल्ली नयनं च वेणिचटुला हारावली नासिका
कामिन्याः[5] पुरुषेषु सुन्दरतरं तत्कर्णपालीयुगम् ॥ ६१

वक्त्रेन्दुश्छत्र[6]मीषत्स्मितमपि कुसुम भ्रूलता चापमासीद्
नेत्रद्वन्द्वं शरौघाः श्रवणपरिलसत्कुण्डले दीपमाला ।
वक्षोजौ हेमकुम्भौ जघनपरिसरे भीरु सिंहासने ते
बाल्यं जित्वातिचक्रे वपुषि हृदिभुवा यौवनस्याभिषेकः ॥ ६२

ह्रिया विनमितानना मदविलोकलोलेक्षणा
[7]निगूढविहितस्मिता सपुलका नवोढा वधूः ।
सखीजनमनीदृशं किमपि भावमाबिभ्रती[8]
चकार मदनातुरं रजनिवृत्तसंपृच्छकम् ॥ ६३

दधत् कान्ति रम्यामलकविगलन्माल्यमलसं
स्मरक्रीडाजन्यश्रमजलपृषन्मिश्र[9]तिलकम् ।
रतान्ते संमीलन्नयनकमलं चारु दयितः
पपौ कान्तावक्त्रं सुचिरमिति तृष्णातरलितः ॥ ६४

1 Ms °हमीय°. 2 Ms गृहीताः. 3 Ms °सह्लोल. 4 Ms ° पासी'
5 Ms °न्यात्पु°. 6 Ms °मिष°. 7 Ms निगूह°. 8 Ms °बीभ्रती. 9 Ms °श्रि°.

कान्ते, वल्लभ, यामि, याहि, भवतो मार्गे शिवं[1] वर्तताम्
आयाहि त्वरितो गृहं पुनरपि स्वं पान्थ देशान्तरात् ।
अस्माकं भवितव्यतेति विहितेत्युक्त्वा सनिःश्वासया
रुद्धो लोचनवारिहारिकुचया प्राणेश्वरः[2] प्रस्थितः ॥ ६५

अहो स्नेहमहो रूपमहो कान्तिमहो रतिम्[3] ।
अहो लीलामहो वाणीं कदा तस्या लभेमहि ॥ ६६

[4]अपूर्वः कोऽपि रूपस्य योषितां महिमा महान् ।
मोह्यन्ते योगिनो येन नेत्रगोचरवर्तिना ॥ ६७

लावण्यसलिलापूरा विलासलहरीयुता ।
चललोचनमीनेयं[5] बाला कामतरङ्गिणी ॥ ६८

चरणपतितां [6]सलग्नाङ्गीं भवत्यनुरागिणीं
गतघृण कथं मुग्धामेतां भवानवमन्यते[7] ।
इति [8]निगदितस्तत्सख्या तु प्रियः प्रणयान्वितो
विविधकरणै[9]र्मानं मुक्त्वा प्रियां समरञ्जयत् ॥ ६९

रथो वामाक्षीयं चपलनयने यस्य तुरगौ
कशा वेणीरश्मिः सरलतरला[10] हारलतिका ।
नितम्बो यच्चक्रं कुचयुगवरूथो हरति मे
[11]तमारूढ[12] श्वेतः कुसुमविशिखः सारथिरसौ ॥ ७०

विलासावासान्तः कितवचरितेन प्रणयिना
सुखेनासीनायाः सुसखि शयने सायकमये ।
कराक्रान्तौ कृत्वा कथमपि कुचौ मेऽतिकठिनौ
हठेनाश्लिष्टायाः परिशिथिलतां नीविरभजत् ॥ ७१

1. Ms शर्वं. 2 Ms प्राणेश्वरं. 3 Ms °ति. 4 Ms अपूर्व. 5 Ms °मिनेयं. 6 Ms सलग्ना°. 7 Ms °से. 8 Ms निगदितं. 9 Ms °करुणै°. 10 Ms °लतला. 11 Ms °तदा°. 12 Ms °ढो.

[हेमन्तकालवर्णनम्]

कन्दर्पादेशजाग्रद्विविधसुरतवित्कान्तदन्तक्षतोष्ठ[1]-
[2]व्यावल्गत्कान्तिराजत्सु[3]ललितललनासीत्कृतापीतवेगाः[4] ।
हेमन्ते वान्ति वाता विरहितवनितावक्त्रसोष्माभिनिर्यन्[5]-
निःश्वासा वारिधाराधरणबहुलतामुष्णतामुद्वहन्तः ॥ ७२

प्रौढा पीनपयोधरोरुकलशा[6] माञ्जिष्ठरागांशुका
सौम्या वृत्तनितम्बचक्रचतुरा पर्यङ्कभूमिस्थिता ।
अन्तः[7]सभृतभासुरस्मरबृहद्भानुर्मनोहारिणी
हेमन्ते हिमहारिणी सुखरता नृणां हसन्ती प्रिया ॥ ७३

शीतर्तुभीतस्तव संगमेन मनःस्थितेनैव न सान्त्वयामि[8] ।
कदावयोरेव विधिर्विधाता शय्यासने सन्ततगात्रयोगम् ॥ ७४

ऊरुभ्यां गाढमूरू मदनमदभवद्वाष्प[9]भावोत्तराभ्यां
पीनोत्तुङ्ग[10]स्तनेन [11]प्रमुदितवदना वक्षसालिङ्ग्य वक्षः ।
सोत्कण्ठं कण्ठदेशे निजभुजलतया लीलयारुह्य दोलां
हेमन्तर्तौ[12]स्वभर्तुर्निशि च सुकृतिनी कापि शेते गृहान्तः॥ ७५

मुग्धां नाथ वृथा प्रतारयसि रे किं मां वृथा भाषसे
[13]नैषास्मीति मया विना भव सखीमान्यो जनो मान्यताम् ।
मामेवं [14]वद दुर्वचः पिशुनया कान्ते कया पाठिता
वर्तन्ते त्वयि [15]संतत प्रियतमे प्राणा इमे मामकाः ॥ ७६

शय्यायां शयिता समीक्ष्य दयितां बाष्पाम्बुपूर्णेक्षणां
पप्रच्छागतसाध्वसः कुत इदं कान्तस्तदालीजनम् ।
अन्यस्त्रीगमनात् तवेति कथिते तासां प्रतीत्यै पुरः[16]
संस्पर्श्येत [17]मुहुर्मुहुः प्रियतमावक्षोजलिङ्गद्वयम् ॥ ७७

1 Ms °क्षितोष्ठ°. 2 Ms °वलत्का°. 3 Ms °राजसु°. 4 Ms °वेगा°. 5 Ms °भिर्नि°. 6 Ms °कलिशा. 7 Ms °संभृत°. 8 Ms शांतयामि. 9 Ms °वतबा°. 10 Ms °त्तङ्ग. 11 Ms °न मुदित°. 12 Ms हेमन्तर्तौ. 13 Ms नैषास्मिती. 14 Ms चद. 15 Ms संतत. 16 Ms पुरूः 17 Ms मुहुर्मुहु.

अचिन्त्यापि स्नेहं करकलितमाक्षिप्य वसनं
प्रयाते हृन्नाथे सविनयमनादृत्य वचनम् ।
ततः [1]सख्या ऽलक्ष्य प्रियतममथोच्चैःस्वरमहो
पटान्तेनावृत्य स्वमुखमनया तत्र रुदितम् ॥ ७८

इन्दुः सुन्दरि मन्दरश्मिरधुना जातो विभाता[2] निशा
कान्तानां कटुरारटीति विकटः कान्ते पटुः [3]कुक्कुटः ।
हीनस्नेहरसेन रूक्षदशया दीपोऽपि मन्दायते
मानं मानिनि मुञ्च वल्लभमिमं कामोत्सवे [4]रञ्जय ॥ ७९

बाणेनामृदुना [5]दुनोति मदनो मन्दोऽपि मां त्वत्कृते
दीने ऽस्मिन् नववल्लभे कुरु दयामिन्दीवराक्षि प्रिये ।
अङ्गैः संगमरङ्गभङ्गिचतुरैरानन्दितालिजनैः सु-
तल्पोत्सङ्गविकल्पजल्पनपरं मानेन चालिङ्ग्य ॥ ८०

त्वां नता स्मर कृताञ्जलिरेषा मा विमानय मनोरम काम ।
आगते तु दयिते भवदाज्ञां धारयामि सरसा शिरसा ऽहम् ॥ ८१

दुकूले प्रतिकूलं मे [6]हारो हा रोचते न मे ।
मेखला मे खला जाता [7]हंसकं हिंसकं सखी ॥ ८२
मुक्ता [8]मुक्तालता कण्ठे कान्ते कान्ते समागते ।
अञ्जनेनाञ्जिते[9] सख्या नेत्रे नेत्रधृतिः [10]कृता ॥ ८३

मुक्ता मुक्तालतेयं कुचकलशरुचा कण्ठदेशे सुदेशे
वासो वासोचितं स्वं परिहितमनया चारु बिम्बे नितम्बे ।
नक्तं भुक्तं विभुक्तं विपुलनयनयोञ्जनं रञ्जनं वै
भर्ता धर्ता विहर्ता सुरतविलसितै रञ्जितो ऽ[11]रं जितश्च ॥ ८४

बद्ध्वा दृढं [12]रशनया प्रणयप्रकोपा
नीत्वा निवासभवनं[13] विहितागसं माम् ।
कान्ता विलोचनजलप्लुतचक्रचन्द्रा
कर्णोत्पलेन सविलासमसौ जघान ॥ ८५

1 Ms सख्यालक्ष. 2 Ms विभातो. 3 Ms कुर्क्कटः. 4 Ms रञ्जयः. 5 Ms हुतोनिमृदुनो. 6 Ms राहो. 7 Ms हंसकिं. 8 Ms मुक्त°. 9 Ms°ने नोजने. 10 Ms कृताः. 11 Ms °तोरं°. 12 Ms रसनया. 13 Ms °भुवनं.

आलिङ्गितानि नवपल्लवकोमलानि
बाला बलादपि [1]मयातिमनोहराणि ।
अङ्गान्यनङ्गललितानि किमात्मनैव
संकोचयत्यनिभृतानि मदालसानि ॥ ८६

[शिशिरकालवर्णनम्]

किञ्चिद् द्रुमान् मुकुरयँस्तरसा रसालान्
हेमन्त[2]कान्तमदनं मदयन् जनेषु ।
[3]लीलायितेन मलयाचलमल्लमालाद्
आवाति मारुत इतः किल [4]शैशिरोऽयम् ॥ ८७

एतस्मिन् [5]शिशिरे विधौ विमुखिते यासां प्रियः प्रोषितः
पत्युः संगमसंभवं सुखमहो यासां च नो जायते ।
मानिन्यो धृतभूरिमानविभवास्तोषं न या लेभिरे
तासां किं न मनोभवः सखि मनः [6]सीमन्तिनीनां दहेत् ॥ ८८

[वसन्तसमागमः]

प्रियतम न ते युक्तं गन्तुं वसन्तसमागमे
मुकुरिततरावङ्कस्थां मां विहाय मनोगताम् ।
कलकलरवान् रात्रौ कृत्वा सकोकिलया [7]रुतान्
भवति चलिते संप्रत्येषा न जीवितुमुत्सहे ॥ ८९

वासावासविलासवासित[8]मतिः प्रेमप्रसन्नां प्रियाम्
आलिङ्गन् दयितो दृढोष्मलकुचां शीतं च नो [9]विन्दते ।
चेतःसंपरिवर्तमानदयितासंदीप्यमानोल्लसत्[10]-
[11]संसर्पद्विरहाग्नितापितवपुः पान्थोऽपि नो जग्मिवान् ॥ ९०

प्राणेश्वरे समायाते प्राणा मे पुनरागताः[12] ।
सखीदं कौतुकं पश्य मृताहं जीविता पुनः ॥ ९१

निर्याते दयिते गृहादपि सखि प्राणैर्गता पृष्ठतः
[13]प्राग्ग्रामे पुनरागतास्मि [14]भवनं कुर्वेऽस्य सेवां ततः ।
स्वप्नेषु प्रतिरात्रिजातसुरतैश्चेतोविमोहात्मकै-
स्तत्रापि [15]प्रणयातिरेकललितैः[16] प्राणेश्वरो रञ्जितः ॥ ९२

1 Ms °यानि. 2 Ms °मंत°. 3 Ms °यते°. 4 Ms शिशरो°. 5 Ms शशिरे. 6 Ms. °मंतनी°. 7 Ms कृतान्. 8 Ms. °वासितः°. 9 Ms विंदंत. 10 Ms °लसत्. 11 Ms संसर्प्य. 12 Ms °गता. 13 Ms प्राग्रामे. 14 Ms भुवनं. 15 Ms °यति°. 16 Ms °तै°.

तन्वीयं तरलेक्षणा मम मनः पञ्चेषुणा हन्यते
वक्षोजावियमुन्नतौ[1] प्रवहते खिन्नं ममेदं मनः ।
मध्येऽसौ सुकृशा [2]ममाद्दढमतिप्राप्नोति भङ्गं मनो
लावण्याम्बुपरिप्लुतेयमबला शून्यं मदीयं मनः ॥ ९३

[3]यत्रादौ कलमेखलाकलकलः प्रादुर्बभूवातुल-
स्तत्रैवाथ[4] तदेव नूपुररणत्कारस्ततः शुश्रुवे ।
तन्मन्ये पुरुषायितं प्रमदया वामायितं कामिना
पश्चाच्चित्ररतावसानसमये ताभ्यां स्वभावे स्थितम् ॥ ९४

आनन्दं हृदि धेहि कङ्कणमथो [5]संधेहि पाणिद्वये
[6]सद्वासः परिधेहि हारमुरसि त्वं पादयोर्नूपुरम् ।
सामोदानि निधेहि मूर्ध्नि कुसुमान्यक्ष्णोश्च [7]कालाञ्जनं
मुग्धे साधु विधेहि मङ्गलमथायाते निजप्रेयसि ॥ ९५

समागतः पूर्णमनोरथासि तवैव कान्तः परिपूर्णकामः ।
आगच्छ बाले कुरु मङ्गलानि गौरी प्रसन्नैव तवाद्य नूनम् ॥ ९६

सानन्दा भव सादरा भव भव प्रीता सकामा भव
साहारा भव भूषिता भव भव [8]प्राणेश्वरे [9]प्रेयसी ।
आयातेन रमस्व वासभवने [10]बाह्याच्च देशान्तराद्
नानामोहनपण्डितेन सहिता कान्तेन कामोत्सवैः ॥ ९७

चिन्तां मुञ्च, भजस्व [11]मानिनि धृतिं, मोहे मनो मा कृथाः
[12]द्वित्रैरेव हि [13]वासरैः [14]प्रियतमप्रत्यागमस्यावधिः ।
इत्येवं प्रतिबोधयेत् प्रियसखी यावत् प्रियां सादरं
तावत् [15]कान्त उपागतोऽङ्गभुवि[16] प्रीणाति वाक्यामृतैः॥ ९८

आरूढोऽतिसमुन्नतस्तनमयं सिंहासनं योषितां
तद्वक्त्रेन्दुधृतातपत्ररुचिरस्तद्भ्रूलताकार्मुकः ।
तद्वेणीविलसत्कृपाणफलकः शृङ्गारिणां पूजित-
स्तल्लोलेक्षणमार्गणो विजयते श्रीनन्दनः श्रीमताम् ॥ ९९

---

1 Ms. मन्न तौ. 2 Ms मम°. 3 Ms यात्रादोकल°. 4 Ms °वाप्य. 5 Ms सेवेह्नि. 6 Ms °ह्रासा. 7 Ms कालीजनं. 8 Ms प्राणेश्वर. 9 Ms प्रेयसि 10 Ms बाह्येव. 11 Ms मानिनी. 12 Ms द्वित्रि°. 13 Ms. वासरे. 14 Ms प्रियतमः. 15 Ms कान्तमुपा°. 16 Ms भूवि.

सौजन्ये निरताः खलेषु विरता [1]विद्वद्गुणग्राहिणो
लोके विश्रुतकीर्तयो गुणभृतो ये केऽपि शृङ्गारिणः ।
बिभ्राणा करिकुम्भतुङ्गकठिनौ[2] पीनावुरोजौ सदा
तेषां वामविलोचना गुणवती भोगाय भूयाद् भुवि ॥ १००

उन्मीलन्मतियन्त्रसूक्ष्मविवरां[3] सानन्दमुत्कर्षितां[4]
प्राप्योच्चैर्विलसत्सुवर्णगुणिनीं खेलन्मनोभूमणिम् ।
[5]श्री हर्षः [6]सुहृदां विभूषणकृते सद्वाक्यमुक्ताफलै-
[7]रग्रथ्नाद् द्विजराजरोचिरमलां शृङ्गारहारावलीम् ॥ १०१

इति श्रीहर्षविरचिता शृङ्गारहारावली समाप्ता[8] ।

1 Ms विद्वद्गुणा ग्राहिणी. 2 Ms °कठिना. 3 Ms सूक्ष्म्य विवरा. 4 Ms °तः. 5 Ms श्रीहर्ष. 6 Ms सुहृदं. 7 Ms यद्ग्रन्थद्विजं°. 8 Ms प्ताः.

सं. १५३३ आषाढ वदि ८ शुक्रे लिखितं द्विवेदिविद्याधरसुतलक्ष्मीधरेण ॥

(पुष्पिकानन्तरं श्लोकद्वयीयमधिका समुपलभ्यते)

पूर्णाम्भःकुम्भभाराः प्रजवनचलिताश्चुञ्चुकं[1] चालयन्त्य-
श्चोलं संवेलयन्त्यश्चलकमलदृशो लोकमालोकयन्त्यः ।
झंकारैर्झंझराणां झटिति जनमनःखेदमुत्पादयन्त्यो
नागर्य्यः स्वर्णगौर्यो वडनगरभवा यान्ति गेहं सरस्तः ॥ १

भो पान्थ[2] भ्रान्तचेताः[3] परिभ्रमसि कथं नैव दृष्टा कदाचिद्
वत्सोवाली मृगाक्षी जगति सुविदिता रूपराशिं दधाना ।
यस्याः सौन्दर्यराशिं विधिरतिचतुरां वीक्ष्य चक्रे घृताचीं
यद्रूपं द्रष्टुमिन्द्रो मखशतसुकृतैर्दृकसहस्रं दधार ॥

1 Ms चञ्चुकं. 2 Ms पान्थः. 3 Ms चेता.

श्लोकपङ्क्ति–अनुक्रमणिका

[Figures indicate the numbers of verses.]

NOTES

श्लो. १. अन्वयः—विजयी कामः कौसुमकार्मुकं करतले कृत्वा, कान्ताकान्तकपोलमण्डलतले पत्रावलीकर्मणि कामिनोऽधिकं युञ्जानो, रत्याऽनिशमनुयातः, जगन्ति मदयन्, सौहार्दान्मधुमत्यजन् हि, भुवि भवतां सौख्याय भूयात् ।

विजयोऽस्यास्तीति विजयी । "अत इनिठनौ" । काम्यतेऽनेन पुंसि संज्ञायां घः, कामः । कुसुमस्येदम् कौसुमम् "तस्येदम्" सूत्रेणाण् । कर्मणे प्रभवति, इति कार्मुकम्-"कर्मण उकञ्" सूत्रेण उकञ् प्रत्ययः आदिवृद्धिश्च । युङ्क्ते इति युञ्जानः-"लटः शतृशानचौ." इति शानच् । करस्य तलं तस्मिन् करतले । कृधातोः क्त्वा प्रत्ययः "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वा" । कान्तौ च तौ कपोलौ च कान्तकपोलौ, कान्तायाः कान्तकपोलौ, तयोर्मण्डले (मण्डलौ वा) । मण्डयतीति मण्डलम् । वृषादित्वात् कलच् । तयोस्तलं, तस्मिन् पत्राणामावली, तस्याः कर्म, तस्मिन्, कामोऽस्त्यस्येति कामी, तस्य कामिनः । अनुयात इत्यत्र कर्तरि क्तः, "गत्यर्थाकर्मक०" सू. ।

मदयतीति मदयन् शतृ० । शोभनं हृदयं यस्य सः सुहृत्, तस्य सुहृच्छब्दस्य सप्तम्यर्थे भवार्थे "तत्र भव" इति सूत्रेणाण् । अनुशतिकादित्वादुभयपदस्य वृद्धिः । सुहृदि भवं सौहार्दं, तस्मात् सौहार्दात् । अथवा इदमर्थेऽण् । त्यजतीति त्यजन्, न त्यजन् अत्यजन्, शतृ० । सुखस्य भावः कर्म वा सौख्यम्, ष्यञ्-तस्मै सौख्याय. भवतां भूयात् ।

पत्रावली (पत्रभङ्गः) पत्राणां पत्राकृतीनामावली श्रेणी राजिर्वा ।

'कामः पञ्चशरः स्मर' इत्यमरः ।

The reading सौहार्दामधुम् of the Ms. has been emended by 'दान्मधु.' The sense requires पञ्चमी. The omission of 'न्' from न्म must be due to the carelessness of the scribe.

This is a मङ्गल or benedictory verse. According to दण्डिन, a महाकाव्य 'begins with' आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' (का. द, प. १, श्लो. १४.). This, however, holds good about all literary works. In this connection the following sentence is generally quoted from the महाभाष्य of पतञ्जलि–"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भवन्ति अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति ।"

Dr. A. B. Dhruva in his Notes on स्याद्वादमञ्जरी discusses this topic in some detail which being very instructive, I quote below:

" Much intellectual energy has been spent in Brahmanical books of Logic (मीमांसा and न्याय) on demonstrating the necessity of मङ्गलाचरण and on determining the manner in which it acts towards fulfilling its purpose. The . duty of performing a मङ्गलाचरण is based upon शिष्टाचार (practice of the good and respectable) which itself presupposes, say the ब्राह्मणs, a vedic commandment. As regards its **modus operandi**, while some hold that it brings an undertaking to a successful completion, removing obstacles if any (समाप्ति or निर्विघ्नसमाप्ति), others think that its function is simply to counteract the bad luck which causes obstacles (विघ्नध्वंस), the completion itself depending upon other natural or supernatural causes. Then, again, while some connect the मङ्गल with the completion (समाप्ति) through the removal of obstacles (विघ्नध्वंसस्तु मङ्गलस्य द्वारम्), others believe that a kind of religious merit (अपूर्व) is created by the मङ्गल, which removes the obstacles and produces the completion (अपूर्वद्वारैव मङ्गलस्य समाप्तिहेतुता). The scholiasts were not unaware of such incomplete works in Indian literature as बाण's कादम्बरी despite a मङ्गलाचरण, and complete works even without a मङ्गलाचरण. Consequently, they have endeavoured to explain the breach in the causal law by the hypothesis of मङ्गलाचरण done in a previous life (जन्मान्तरीय मङ्गल), and also of comparative qua - tities and qualities of the मङ्गलाचरण and the evil कर्म....Yet, the trend of their belief in the efficacy of मङ्गलाचरण would seem to be in the direction of rationalism. For the whole subject, see मङ्गलवाद in तत्त्वचिन्तामणि etc.

"The religious belief in the necessity of propitiating gods before commencing any serious piece of work–even the day's routine–is natural, and so we find that in the vedic ritual, the main sacrifice was often preceded by a small introductory offering made to the gods (cf. " आग्नावैष्णवमेकादशकपालं चरुं निर्वपेद्दर्शपूर्णमासावारिप्समानः "). Similarly, as recorded in the भरत नाट्यशास्त्र, a tediously long religious ceremony was performed on the stage, before commencing a dramatic•representation. The ceremony which was originally mixed doing (कायिक) and speaking (वाचिक) came, in course of time, to be cut down to the latter; thus, the recitation of नान्दी

remained the sole survivor of the old elaborate ceremonies of the पूर्वरङ्ग. Thus the मङ्गलाचरण in all literery works is mostly verbal:—

स्तुतिनमस्कारादिषु मङ्गलव्यवहारः शिष्टानाम्...अत एव दुरितनाशकमपि गङ्गास्नानादि न मङ्गलम्। Tat. Ci. Such a मङ्गलाचरण generally takes one of the three following forms: (i) आशी: Benediction or Prayer, (ii) नमस्क्रिया Salutation, and (iii) वस्तुनिर्देश Description, the last being supposed to be accomplished even by a bare reference to the name of a god, or the use of a word which means 'a god' as, for example, the word देवता in the first line of कालिदास's कुमारसंभव—'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।' (Vide स्याद्वादमञ्जरी, Notes, pp. 1-20)

श्लो. २. स्मरस्य सायकपञ्चके व्यस्ते (जगत्सुद्यतः) जगदुद्यतः जगतां जेतुं षष्ठो जैत्रशरः कान्ताकटाक्षः विषयिणां शरव्यं चेतो हरन् भवतां स्वर्गादत्यति-दुर्लभं करतले प्राप्तश्रिकं पार्थिवम् अक्षयशर्मप्रेम भूरि तनोतु।

स्मरयत्युत्कण्ठयतीति स्मरः, स्मृ आध्याने पचाद्यच्, स्मरस्तस्य स्मरस्य। व्युपसर्गादस्तेः क्तप्रत्ययो व्यस्तस्तस्मिन् व्यस्ते, सायकानां पञ्चके तस्मिन् सायक-पञ्चके इत्यत्र स्वार्थिक-क-प्रत्ययः। गच्छतीति जगत् तस्मिन् जगति उद्यतः जगदु-द्यतो वा। षण्णां पूरण· षष्ठः "तस्य पूरणे डट्," "षट्कतिपयचतुरां थुक्" इति थुक्, षष्ठः। जयतीति जेता, तृचि गुणे जेतृशब्दात् प्रज्ञादित्वादण्, वृद्धिः। जैत्रश्चासौ शरश्च जैत्रशरः। शरवे हिंसाय हितं शरव्यम्, उगवादिभ्यो यत्। हरतीति हरन्, शतृप्रत्ययः। विषया एषाम् सन्तीति विषयिणस्तेषाम्। दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभम्, खल् प्रत्ययः। अति=अत्यन्तं दुर्लभमतिदुर्लभम्। पृथिव्या इदम् पार्थिवम्, इदमर्थेऽण्। कान्तायाः कटाक्षः। करस्य तलम् करतलं तस्मिन् करतले। प्राप्ता श्रीर्येस्य तत् प्राप्तश्रिकम्। नास्ति क्षयो यस्य तदक्षयम्। शर्मयुक्तं प्रेम शर्मप्रेम, मध्यमपदस्य लोपः। भूरि तनोतु ॥

कामः पञ्चशरः स्मरः। विष्टपं भुवनं जगत्। विषयी विषयासक्ते। चित्तं तु चेतो हृदयम्। संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः। इत्यमरः।

Compare the following श्लोकs for the names of the five arrows of स्मर i. e. कामदेवः—

मन्दोऽयं मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणां नवं
माद्यत्कोकिलकूजितं विचकिलामोदः पुराणं मधु।
बाणानित्युपदीकरोति सुरभिः पञ्चैव पञ्चेषवे
यूनामिन्द्रियपञ्चकस्य युगपत् संमोहसंपादिनः ॥९२॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार, Page 384)

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥
उन्मादनस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा ।
संमोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः ॥
(अमरकोश-महेश्वरटीका-सं. झळकीकर--1896; 5th edition, Page 6)

षष्ठो जैत्रशरः...कान्ताकटाक्ष,-Cf. रतिरहस्य.
परिजनपदे भृङ्गश्रेणी पिकाः पटुबन्दिनो
हिमकरसितच्छत्रं मत्तद्विपो मलयानिलः ।
कृशतनुधनुर्वल्ली लीलाकटाक्षशरावली
मनसिजमहावीरस्योच्चैर्जयन्ति जगज्जितः ॥ ३ ॥
(रतिरहस्य, edited by देवदत्त शर्मा, बनारस, १९१२)

जगद्युद्धतो—The reading of the Ms. जगदुद्धतः makes the explantion of जगत् difficult because the object of जेतुं is जगतां (कर्मणि षष्ठी), so either it has to be जगत्युद्धत (जगति+उद्धतः) or a compound like जगद्युद्धतः or जगदुग्रतः. The reading जगद्युद्धतः requires minimum orthographical change.

स्वर्गा...पार्थिवं शर्मप्रेम. Ordinarily a heavenly thing is more difficult to get than any earthly thing, but in this particular case the bliss of the earthly love is more difficult to get (अतिदुर्लभं) than even heaven.

श्रियं—Here the reading is श्रियं, but the reading श्रिकं would be a better reading.

श्लो. ३. मलयावनीनां चन्दनवनीराधूय कुसुमद्रुमेषु अतितरां स्थैर्यं भजन् वधूनां सुरतजां ग्लानिं हरन् मधुरो वातः प्रगे (प्रातःकाले) सरसीतरङ्गान् अतरलयत् ।

मलयस्यावन्यः मलयावन्यस्तासां मलयावनीनाम् । चन्दनस्य (चन्दनानां वा) वन्यस्ताश्चन्दनवनीः (द्वितीयाबहुवचनान्तमिदं पदम्)॥ आधूयेति आङ्धूधातोः क्त्वाप्रत्यये तस्य ल्यबादेशे वनधातोः इनिः प्रत्यये ङीपि वनी स्त्री। कुसुमानां द्रुमास्तेषु कुसुमद्रुमेषु। अतितरामत्यन्तम् । स्थाधातोः तिष्ठतीति स्थिर । स्थाधातोः 'अजिरशिशिरे'ति सूत्रेण किरच्प्रत्यये कृते स्थिरशब्दस्य सिद्धिः। स्थिरस्य भावः कर्म वा। 'वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च' आदिवृद्धिश्च स्थैर्यम्। भजतीति भजन् शत्रन्तः प्रयोगः। शोभनं रत (रमणं रतम्) सुरतम्, (सुरते जाता 'सप्तम्यां जनेर्डः' प्रत्ययः टिलोपश्च स्त्रीत्वे टापि। सुरतजातां सुरतजाम्। ग्लै निप्रत्यये आविग्लानिस्ताम्

(ग्लायति अनेनास्मिन् वा " वहिचि० " इति निः । प्रगीयते । अत्र वा गैशब्दे कप्रत्ययः । प्रगे प्रातःकाले । सरस्यास्तरङ्गास्तान् सरसीतरङ्गान् । तरन्तीति तरङ्गाः, " तरत्यादिभ्यश्च " इत्यङ्गच् । तरलं करोत्याचष्टे वा प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् । ह्यस्तनभूतकाले (लङि) अडागमे इकारलोपश्च भवति णिचि तस्य गुणायादेशौ शपि लङि तिपि ।

कासारः सरसी सरः । भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा, इत्यमरः ।

प्रगे—means early morning.

प्रगे प्रातः प्रभाते—(See Amarakos'a का. ३; S'l. 19)

The reading of the Ms. is °तरलयन्, but that would make the sentence void of verb. Therefore it is emended into °तरलयत्.

श्लो. ४. सखि ! कः शाखी यस्य पुष्पं पुष्पायुधस्यायुधमभवत् (तस्मिन्) तत्र छिन्ने स चित्तेशयश्चिरान्निरायुधदशां धत्ते, सुभग इत्थं त्वदीयविरहे कन्दर्पसंतापिता सा बाला बालसखीजनेन सहिता क्रीडावने भ्राम्यति ।

शाखा अस्य सन्तीति शाखी । (शाखा अस्यास्तीति विग्रहे "व्रीह्यादिभ्यश्चेति" सूत्रेणेनिः । पुष्पमायुधं यस्य अथवा पुष्पाण्यायुधानि यस्य सः, तस्य पुष्पायुधस्य । आयुध्यन्तेऽनेनेति विग्रहे घअर्थे कविधानम् । तस्मिन् इति तत्र "सप्तम्यास्त्रल् " । छिदः क्तप्रत्ययः, "रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" इति सूत्रेण तकारस्य दकारस्य च नकारे छिन्नस्तस्मिन् छिन्ने । चित्ते शेते-इति विग्रहे "समासे अधिकरणे शेते" सूत्रेण टप्रत्ययो भवति अयादेशः । चित्तेशय इत्यत्र "शयवासवासिष्वकालात्" इति सूत्रेण सप्तम्या अलुक् । निर्गतमायुधं यस्मात् (यस्य वा) तस्य दशा ताम् । अनेन पतेन वा प्रकारेण इति इत्थम्; "इदमस्थमुः" सूत्रेण इदम्शब्दात् थमुः । शोभनं भगं यस्य (अथवा शोभनो भगो यस्य) सुभगस्तत्सम्बुद्धौ सुभग । तवायम् त्वदीयश्चासौ विरहस्तस्मिन् । कन्दर्पेण संतापिता कन्दर्पसंतापिता । बालश्चासौ सखीजनस्तेन "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति सूत्रेणात्र तृतीया भवति । क्रीडाया वनम्, तस्मिन् क्रीडावने । भ्रमधातोः श्यनि दीर्घे भ्राम्यति लटि तिपि शपि ।

अनोकहस्तरुः शाखी इति धनञ्जयः । पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुममित्यमरः । वृक्षो महीरुहः शाखीत्यमरः । आलिः सखी वयस्या चेत्यमरः ।

The pang of the arrow of the love is so unbearable to the lady that she wants to find out the tree whose flower has become the cupid's arrow, so that she may uproot it.

श्लो. ५. कान्ते अभिनवस्त्वन्मुखचन्द्रमा दन्तावली चन्द्रिका मत्यादि-

ष्टमहावियोगतिमिरः कौरङ्गनेत्राङ्कितः यस्मिन् (वसन्ते पूर्णोऽपि) (चन्द्रः) मिथः कुचचक्रवाकमिथुनं मुदा आश्लिष्यन् मदेन नेत्रनलिनानन्दं वितन्वन् तुङ्गायेत (यस्मिन् पूर्णऽपि)।

चन्द्रोऽस्त्यस्याः "अत इनिठनौ" "ठस्येकः" टापि इत्वे। तव मुखमिति त्वन्मुखम्, त्वन्मुखमेव चन्द्रमाः। दन्तानामावली-दन्तावल्येव चन्द्रिका। महांश्चासौ वियोगश्च महावियोगः। दन्तावली चन्द्रिकया प्रत्याविष्टं महावियोगतिमिरं येन सः दन्तावलीचन्द्रिकाप्रत्याविष्टमहावियोगतिमिरः। कुरङ्गस्येमे कौरङ्गे, कौरङ्गे च ते नेत्रे ताभ्यामङ्कितः। इदमर्थे अन्तर्भावितण्यर्थेऽण् भवति। कुचावेव चक्रवाकौ तयोर्मिथुनम्। आश्लिष्यतीति आश्लिष्यन्ते वितनोतीति वितन्वते शतृप्रत्ययः। तुङ्ग इव आचरति इति विग्रहे 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इति सूत्रेण क्यङि दीर्घे आत्मनेपदे विध्यर्थे लिङि तुङ्गायेत। नेत्रे एव नलिने तयोरानन्दस्तम्॥ (रूपकम्)

आननं लपनं मुखम् इत्यमरः। हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इत्यमरः। चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना-इत्यमरः। रदना दशना दन्ता इत्यमरः। कोकश्चक्रश्चक्रवाक इत्यमरः। कुरङ्गो हरिण इत्यमरः। तमिस्रं तिमिरं तम इत्यमरः। नलिनं कमलमित्यमरः।

श्लो. ६. संपूर्णो मानिनीमुखचन्द्रमा दन्त चन्द्रिकया नूनं वियोगविभवं तमो विद्रावयति। (रूपकम्, उत्प्रेक्षा च)।

संपूर्यते स्मेति संपूर्णः, पूरी आप्यायने कर्तरि कर्मणि वा क्तः। मानोऽस्त्यस्या इति मानिनी, "अत इनिठनौ" इनि ङीपि मानिनी, मानिन्याः मुखम् मानिनीमुखम्, मानिनीमुखमेव चन्द्रमाः। दन्त एव चन्द्रिका तया दन्तचन्द्रिकया। चन्द्रोऽस्त्यस्याः इति विग्रहे "अत इनिठनौ" "ठस्येकः" टापि चन्द्रिका। वियोजनं वियोगः व्युपसर्गात् युज्धातोर्घञ् गुणे कत्वे च वियोगः। वियोगाद्विभवो (उत्पत्तिः) यस्य तत्। व्युपसर्गात् द्रुगतौ इत्यस्माद्धातोर्णिचि वृद्धावावादेशे च लटि तिपि शपि गुणे अयादेशे च कृते विद्रावयति।

संपूर्णः सकलः पूर्ण इत्यमरः। प्रमदा मानिनी कान्ता-इत्यमरः। रदना दशना दन्ता इत्यमरः। अर्थै विभवाः पुंसि इत्यमरः।

श्लो ७. (हे) सुमुखि, (तव) स्तनौ (मम) स्तनान्तरन्यस्तौ (तव) मुखं मम सम्मुखम् (अस्तु)। (हे) सुश्रोणि, मेखला ममोत्सङ्गेऽस्तु।

शोभनं मुखं यस्या सा सुमुखी-"स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इति ङीपि सुमुखी, तत्सम्बुद्धौ सुमुखि। अन्यौ स्तनौ स्तनान्तरे, तयोर्न्यस्तौ स्तनान्तरन्यस्तौ।

सम् संगतं मुखं सम्मुखम्। शोभना श्रोणी यस्याः सा सुश्रोणी, तत्सम्बुद्धौ सुश्रोणि। श्रोणृ संघाते इत्यस्मात्-धातोः "सर्वधातुभ्य इन्" इतीनि प्रत्यये ङीपि श्रोणी, श्रोण्याः मेखला श्रोणिमेखला ङीप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति-तेन श्रोणी श्रोणिः इत्युभयमपि रूपं भवति। ङीप्प्रत्ययविपक्षे श्रोणिमेखला। उत्सञ्जनमुत्सङ्गः, भावे घञ्, तस्मिन् उत्सङ्गे। अस्धातोर्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने अस्तु इति रूपम्। अन्तं राति इति अन्तरम्, रा दाने इति धातोः "आतोऽनुपसर्गे क" इति कप्रत्ययः।

स्तनौ कुचौ-इत्यमरः। कटिः श्रोणिः ककुद्मती इत्यमरः। स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा-इत्यमरः।

स्तनौ स्तनान्तरन्यस्तौ—The reading of the Ms. स्तन्यसूनिहन्य° makes no sense hence the emendation.

श्रोणिमेखलाम्—The reading of the Ms. is grammatically inappropriate.

श्लो. ८. कुञ्चत्कोकनदश्रियोर्नयनयोर्जलैर्वक्षोजन्मकिशोरकौ (कोरकौ) प्रक्षालयन्ती पितृगृहं गच्छन्ती मन्दावर्तितकन्धरा कान्ता गुर्वन्तिकाद् (गुर्वन्तिकमागत्य) अपाङ्गेन तु प्रियतमं संवीक्ष्य अन्तर्बाष्पनिरुद्धकण्ठकुहरं (यथा स्यात्तथा) चिरं रोदिति ॥

कुञ्चती च ते कोकनदे च कुञ्चत्कोकनदे तयोः श्रियौ-श्रीरिव श्रीर्ययोस्तयोः कुञ्चत्कोकनदश्रियोः। कुञ्च कौटिल्ये, धातूनामनेकार्थत्वात्कुञ्चदित्यस्य संकुचितेत्यर्थः। कोकान्, चक्रवाकान् नदति इति विग्रहे मूलविभुजादित्वात्क, नादयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयं प्रयोगः। नयनं च नयनं च नयने तयोर्नयनयोः। वक्षसि (सो) जन्म ययोस्तौ वक्षोजन्मानौ, तावेव किशोरकौ कोरकावित्यर्थः। जलैः, जलन्तीति जलानि, जल अपवारणे पचाद्यच् तैर्जलैः। प्रक्षालयतीति प्रक्षालयन्ती, प्रोपसर्गात् क्षलधातोः शतृप्रत्यये ङीपि नुमागमे च कृते प्रक्षालयन्ती। पितुर्गृहं पितृगृहम्। गच्छन्ती गच्छतीति गच्छन्ती शतृ प्रत्ययो भवति ङीपि नुमागमे चोक्तरूपस्य सिद्धिः। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्, ग्रहधातोः "गेहे कः" सूत्रेण कप्रत्यये संप्रसारणे च कृते गृहमिति। मन्दम् आवर्तिता कन्धरा यया (यस्या) सा मन्दावर्तितकन्धरा। कं, शिरसो धरा कन्धरा (ग्रीवायां कन्धरा मता)। कम्यते स्मेति कान्ता, कमेः क्तः दीर्घे-"अनुनासिकस्य०" टापि कान्ता। गिरति अज्ञानम्, गृणाति वा उपदेशमिति गुरुस्तस्य अन्तिकं गुर्वन्तिकम्, तस्मात् गुर्वन्तिकात्। अत्र 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति वार्तिकेन पञ्चमी भवति, गुर्वन्तिकादित्यस्य गुर्वन्तिकमागत्येत्यर्थः। अतिशयेन प्रियः प्रियतमस्तम्। "अतिशायने तमबिष्ठनौ०" इति तमप्। अपाङ्गेन कटाक्षेण संव्युपसर्गादीक्षधातोः क्त्वाल्यपि

संवीक्ष्य। अन्तर्बाष्पेण निरुद्धकण्ठकुहरं यथा स्यात्तथा चिरं रोदिति-रुदो लटि तिपि ' रुदादिभ्यः सार्वधातुके०" इति इटि गुणे रोदिति। (उपमा)

रक्तोत्पलं कोकनदम् इत्यमरः। कमला श्रीर्हरिप्रिया संपत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च इत्यमरः। दृगक्षि चक्षुर्नयनमिति धनञ्जयः। सलिलं कमलं जलम्, उरो वासं च वक्षश्च इत्यमरः। गृहं गेहोदवसितम् इत्यमरः। ग्रीवायां कन्धरा मता इत्यमरः। कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने ॥

The young wife going to her father's house sees her dear husband in the presence of the elders so she is not able to give expression to the grief freely. So even though weeping for a long time, she has to smother her cry in her throat.

कुञ्चत् yields more appropriate sense than किञ्चित्.

वक्षोजन्मकिशोरकौ—It is difficult to connect °किशोरता grammatically with the rest of the sentence. The emended reading though grammatically proper is not quite satisfactory.

श्लो. ९. हे सखे, कामाक्षया कान्ता किं कुरुते, रतेषु रमते। केन साकं रतं, त्वया (साकम), अहम् इह, न त्वमनिशं तत्समीपे, सव्रीडा सा सखी, हि, आहारेषु मनोवलेपवसनेष्विच्छां हित्वा अन्तःस्थितैर्भवतोरविरतै रतैः (सव्रीडा) वर्तते ॥

कामोऽक्षयो यस्याः सा कामाक्षया, क्षयतीति क्षयः, क्षि क्षये-अच्। नास्ति क्षयो यस्य सोऽक्षयः। कम्यते स्मेति कान्ता, कमे क्तः दीर्घे टापि। रमणानि रतानि ल्युट् तेषु रतेषु। केन साकमित्यत्र "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति सूत्रेण तृतीया। रमणं रतम् (क्तः)। अस्मिन् इति इह। "इदमो हः" सूत्रेण इदम्शब्दात् हप्रत्ययः। "इदम इश्" सूत्रेण इदम इशादेशः। तस्याः समीपम् तत्समीपम्, तस्मिन् तत्समीपे। अनिशम् (सततम् संततम् घञ्)। आहरणमाहारः घञ्, बहुवचने आहारास्तेषु आहारेषु। मनः अवलेपाश्च वसनानि च अवलेपवसनानि तेषु इच्छां हित्वा, इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते इच्छा इत्यस्य निपातनात्सिद्धिर्भवति। हाधातोः त्वाप्रत्ययः, आकारस्येत्वे ओहाक् त्यागे इत्यस्मात् धातोः क्त्वाप्रत्ययः, "जहातेश्च क्त्वि" सूत्रेण आकारस्येत्वे हित्वा। अन्तः स्थितानीति अन्तःस्थितानि तैरन्तःस्थितैः। न विरतान्यविरतानि तैरविरतैः। विरमणानि विरतानि। व्रीडया सह (वर्तते) इति विग्रहे "तेन सहेति तुल्ययोगे" सूत्रेण समासे "वोपसर्जनस्ये"ति सूत्रेण सहस्य सादेशे सव्रीडा। व्रीड लज्जायाम् "गुरोश्च हलः" इत्यप्रत्यये टापि व्रीडा।

कामोऽभिलाषस्तर्षश्च इत्यमरः। प्रमदा मानिनी कान्ता इत्यमरः। रमणे निधुवनं रतं मैथुनम् इत्यमरः। समीपमभ्यर्णमन्तिकम् इत्यमरः। अनिशं सततं संततमित्यमरः। आलिः सखी वयस्या इत्यमरः। स्वान्तं हृन्मानसं

मनः, चेलं वसनमंशुकमित्यमरः। इच्छा काङ्क्षा स्पृहा इत्यमरः। मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा इत्यमरः॥

This is a dialogue between a lover and a friend of the beloved. The lover asks about his beloved to her friend. She answers that she is enjoying amorous sports. This naturally irritates the lover, who asks with whom she plays. The friend answers that she plays with him as he is constantly with her. In fact she is so much engrossed in him that she forgetting her food, dress and decoration constantly wears a bashfull expression on account of her feeling of shame for her engrossment.

श्लो. १०. सौवर्णनूपुररणच्चरणारविन्दा श्रोणीभरालसगतिर्मृगशावनेत्रा पीनस्तनी सकलचन्द्रमुखी तन्वी कस्य हृदि, अहो, महान्तं मोहं न तनोति ॥

सुवर्णस्येमे सौवर्णे, सौवर्णे च ते नूपुरे सौवर्णनूपुरे, ताभ्याम् रणन्ती चरणे एव अरविन्दे चरणारविन्दे यस्याः सा सौवर्णनूपुररणच्चरणारविन्दा। श्रोण्याः भरः श्रोणीभरस्तेनालसा गतिर्यस्याः सा श्रोणीभरालसगतिः। मृगस्य शावः मृगशावस्तस्य नेत्रे इव नेत्रे यस्याः सा मृगशावनेत्रा। पीनौ स्तनौ यस्याः सा पीनस्तनी। सकलश्चासौ चन्द्रश्च सकलचन्द्रस्तद्वन्मुखं यस्याः सा सकलचन्द्रमुखी, चन्दतीति चन्द्रः। (उपमा)

सौवर्ण इत्यत्र "तस्येदम्" सूत्रेण इदमर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। नुवि पुरति पुर अग्रगमने धातोः "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्ययः। श्रोणृ संघाते इति धातोः "सर्वधातुभ्य इन्" इति इन्प्रत्यये ङीपि च कृते श्रोणीगमनं गतिः स्त्रियां क्तिन्। मृग्यते व्याधैरिति मृगः, मृग अन्वेषणे धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति-अदन्तत्वाद् गुणाभावः। शव्यते इति शावः, शव गतौ धातोः "अकर्तरि च कारके संज्ञाया"मिति घञ् वृद्धिश्च। नीयतेऽनेन "दाम्नी०" इति सूत्रेण ष्ट्रन्प्रत्यये नेत्रपदस्य सिद्धिः। पीनस्तनी इत्यत्र "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधा"दिति सूत्रेण ङीपि। सकलचन्द्रमुखीत्यत्रापि उक्तसूत्रेणैव ङीप्प्रत्ययो भवति। चन्दतीति चन्द्रः, चदि आह्लादने धातोः "स्फायितञ्चि०" सूत्रेण रक्प्रत्ययो भवति। प्यायते स्म इति विग्रहे ओप्यायी वृद्धौ इति धातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति क्तप्रत्ययः "ओदितश्चे"ति नत्वम्, प्यायः पीति प्यादेशः। तनुशब्दात् "वोतो गुणवचना"दिति सूत्रेण ङीपि यणि तन्वीति भवति। अरं शीघ्रं विदतीति विग्रहे "गवादिषु विन्दे" इति वार्तिकेन शः "शेमुचादीना"मित्यनेन नुम्। अरविन्दम्॥ (उपमा)

स्वर्णं सुवर्णं कनकमित्यमरः। मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् इत्यमरः। पदांघ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् इत्यमरः। अरविन्दमहोत्पलम् इत्यमरः। कटिः श्रोणिः ककुद्मती-इत्यमरः। मृगः हरिणः कुरङ्ग इत्यमरः। लोचनं नयनं नेत्रमित्य-

मरः। पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः इत्यमरः। पीनस्थूलपीवरेत्यादि स्तनौ कुचौ-इत्यमरः। मूर्च्छा तु कश्मलं मोह इत्यमरः॥

श्लो. ११. (हे) आलि, अद्याहम् कामतरलेन कान्तेन सहिता तलिने निषण्णा सरलाशयत्वात्तस्य वार्तासु निरता मां भुजोपपीडमालिङ्ग्य तेन किमपि कृतं न जाने (अथवा तेन कृतं किमपि न जाने)॥

आलयति भूषयति आङुपसर्गात् अल भूषणे "अच इः" आलि ङीपि आली तत्सम्बुद्धौ हे आलि। अत्रास्मिन् अहनि इत्यर्थे "सद्यः परुत्" इति सूत्रेण अद्येत्यस्य सिद्धिर्भवति। कामेन तरलः कामतरलस्तेन कान्तेनेत्यत्र "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति सूत्रेण तृतीया भवति। तल्यते वा इति विग्रहे "तलिपुलिभ्यामिनन्" इत्यनेन सूत्रेण इनन् प्रत्ययो भवति, तलिनम् तस्मिन् तलिने। निषीदति स्मेति निसद् "गत्यर्थाकर्मके"ति क्तप्रत्यये "रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" इति सूत्रेण तकारस्य दकारस्य च नकारे षत्वे ष्टुत्वे निषण्णः, स्त्री निषण्णा। आङुपसर्गात् शीङ् धातोरच् "एरच्" आशयः। सरलश्चासौ आशयश्च, तस्य भाव सरलाशयत्वं तस्मात् अथवा, सरल आशयो यस्या सा सरलाशया तस्या भावस्तस्मात्। वृत्तिर्लोकवृत्तम् तदस्त्यस्याम् इति विग्रहे "वृत्तेश्चे"ति वार्तिकेन णः वृद्धिश्च टापि। वार्तानिरता संलग्ना। भुजोपपीडं भुजाभ्यां भुजयोर्वा उपपीड्य इत्यर्थे "सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्ष" इति सूत्रेण णमुलि कृते सिद्धि। आलिङ्ग्येति ल्यबन्तप्रयोगः। कृतमित्यत्र कर्मणि क्तः। जाने इति आत्मनेपदे लटि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम्॥

आलिः सखी वयस्या इत्यमरः। कामः पञ्चशरः स्मरः। दयितः कान्तः प्रियः। वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त इत्यमरः। तलिनम् शय्या तल्यते शयनार्थं गम्यतेऽत्र। निषण्णा उपविष्टा। तरलेन चञ्चलेन॥

तलिन—means a couch.

श्लो. १२. तोयान्तरुल्ललितमीनयुगाभिरूपनीरङ्गिकान्तरचरन्नयनम् शीतं सुगन्धि पार्वणसुधाकरचारु प्रियायाः वक्त्रं लौल्यात् पास्यामि, अम्बु मरुपान्थ इव (पास्यामि) (उपमा)॥

तोयस्यान्तः तोयान्तः, मीनयोर्युगं मीनयुगम्, तोयान्तरुल्ललितं च तत् मीनयुगं च तोयान्तरुल्ललितमीनयुगम्, तद्वदभिरूपं नीरङ्गिकाया अन्तरं नीरङ्गिकान्तरम्, तस्मिन् चरतीति नीरङ्गिकान्तरचरन्नयनम्, तोयान्तरुल्ललितमीनयुगाभिरूपं च तत् नीरङ्गिकान्तरचरन्नयनं यस्मिन् तत्। शोभनो गन्धो यस्मिन् तत सुगन्धि। पर्वणि भवः पार्वणः, "तत्र भव" इति सूत्रेण भवार्थेऽण् वृद्धिश्च। सुधायुक्ताः करा यस्य सः सुधाकरः, पार्वणश्चासौ सुधाकरश्च पार्वण-

सुधाकरस्तद्वच्चारु इति पार्वणसुधाकरच्चारु। पन्थानं नित्यं गच्छतीति पान्थः, मरोः पान्थः मरुपान्थः–पथिन्शब्दात् " पन्थो ण नित्यम् " इति सूत्रेण णप्रत्यये " पथः पन्थ " इति सूत्रेण पथिन्शब्दस्य पन्थादेशः वृद्धिश्च, पान्थः। नीयतेऽनेनेति नयनम्, ल्युट्प्रत्ययः। चरतीति चरन् शत्रन्तः। श्यैङ् गतौ भावे क्तः संप्रसारणादिकार्ये च कृते शीतम्। सुगन्धि–इत्यत्र-सुगन्धशब्दात् " गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभि " इति सूत्रेण इत्वे कृते सुगन्धिपदस्य सिद्धिः। म्रियन्तेऽस्मिन्भूतानीति मरुः। " भृमृशी " इत्युणादिसूत्रेण उप्रत्ययो भवति। उच्यतेऽनेनेति विग्रहे वच परिभाषणे धातोः " गुधृवीपच्विवचि० " इति सूत्रेण त्रप्रत्यये वक्त्रमिति सिद्धिः॥

समानौ मरुधन्वानौ-इत्यमरः। अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंबरम् इत्यमरः। मीनो वैसारिणोऽण्डजः इत्यमरः। सुधाकरश्चन्द्र इत्यमरः॥

नीरङ्गिका—This word is not to be found in Sanskrit lexicons or modern Sanskrit dictionaries. It is a sanskritized form of the देश्य word णोरङ्गी or णिरङ्गी meaning शिरोऽवगुण्ठनम्—(See देशीनाममाला P. 31. s'l 81, see also गुंठो=णिरङ्गी ii. s'l.–90, page 118, B. S. Series).

This peculiarity of sanskritzing of Desi words is a characteristic of श्रीहर्ष, the author of नैषधीयचरित.

Another interesting point is the reference to मरुपान्थ. It is tempting to infer that the author belongs to the Northern India, probably the region round about Marwar and northern Gujarat. The simile also reminds one of a woman of the same region where women have the custom of what is known as लाज or veiling the face in such a way that it lives room for all the coquetry that the eyes of a loving woman are capable of.

The eyes of the beloved moving inside the veil are compared to a pair of fishes moving under the water. Incidentally this simile suggests that the veil was as transparent as the surface of water. If we refer some of the Rajput paintings we can find illustrations of this aspect.

The arder or the eagerness with which the lover kisses her beloved is suggested by the simile of a thirsty traveller in the desert of Marwar drinking eagerly the cool and the fragrant water of a reservoir growing lotuses.

श्लो. १३. दयालुः या मम प्रियतमा स्वेनैव वरकुचद्वितयेन नूनं वेगाति दुःसहविदारणदारुणेभ्यः मार्गणेभ्यः मे हृदयं संवर्म्य सा (माम्) पश्यति ।

दयते इति दयालुः, दयधातोः, " स्पृहिगृहिपतिदयि० " सूत्रेण आलुच्प्रत्ययः। अतिशयेन प्रिया प्रियतमा 'अतिशायने तमबिष्ठनौ" इति सूत्रेण तमप्प्रत्ययो भवति। वरौ च तौ कुचौ च वरकुचौ तयोर्द्वितयं वरकुचद्वितयं, तेन वरकुचद्वितयेन। द्विशब्दात् ' संख्याया अवयवे तयप्" प्रत्ययः। वेजनं वेगो घञ् तेन वेगेनातिदुःसहाश्च ते विदारणाश्च ते दारुणाश्च तेभ्यः वेगातिदुःसहविदारणदारुणेभ्यः। वर्मणा संनह्यति इति संवर्मयति तस्मात् नामधातोः क्त्वा ल्यपि संवर्म्येति रूपम्। व्युपसर्गात् दृधातोर्णिचि तस्माद् भावे ल्युट्। दारयति चित्तम् इति विग्रहे दृ भये धातोः " कृवृदारिभ्य उनन्" इति उननप्रत्यये दारुणपदस्य सिद्धिः। मृग अन्वेषणे अदन्तः तस्मात् "ण्यासश्रन्थो युच् अथवा मार्ग अन्वेषणे ल्युट् " मार्गणम्। (उत्प्रेक्षा) ॥

कलम्बमार्गणशरा इत्यमरः। मार्गणं याचनेऽन्वेषे मार्गणस्तु शरेऽर्थिनि इति हैमः। स्याद्दयालुः कारुणिकः, कुचौ स्तनौ चित्तं तु चेतो हृदयमित्यमरः। वेगः प्रवाहजवयोरपि इत्यमरः। दारुणं भीषणं भीष्ममित्यमरः ॥

श्लो. १४. (हे) सखि, रात्रौ यच्चित्रं कौतुकं समभवत्तदाकर्ण्यताम्। अद्य समागतेन कान्तेन शयनासीना(अहम्) समालिङ्गिता–एतस्मिन् समये असौ कान्तः चेतोहरं रसान्तरमासाद्य मन्मयतामुपागमत् ततोऽहं तन्मयी जाता।

राति सुखम् इति रात्रिस्तस्याम् रात्रौ। राधातोः " राशदिभ्यां त्रिप् " रात्रिः। कर्णं करोत्याचष्टे वा कर्णयति, आङ्पूर्वात् तस्मात् कर्मणि लोटि प्रथमपुरुषैकवचने आकर्ण्यतामिति। अत्रास्मिन् अह्नि इत्यर्थे " सद्यः परुत० " इति सूत्रेण अद्येति सिद्धिः। सम्-आङ्उपसर्गाभ्यां गमधातोः० " गत्यर्थे "ति सूत्रेण कर्तरि क्तः मलोपः समागतस्तेन। शयने आसीना शयनासीना। शय्यतेऽत्रेति विग्रहे शीङ् स्वप्ने भावे ल्युट् शयनम्। आस्ते–इति आसीना आस्धातोः शानच् ' ईदासः "इति सूत्रेणाकारस्येत्वे स्त्रीत्वविवक्षायां टापि आसीना। चेतसो हरः चेतोहरः। अन्यो रसो रसान्तरम्। सम्-आङ्उपसर्गाभ्यां लिगि (लिङ्ग) धातोः क्तप्रत्यये इडागमे स्त्रीत्वे टापि समालिङ्गिता। आसाद्येति ल्यबन्तः प्रयोगः प्राप्येत्यर्थः। मन्मयस्य भावो मन्मयता ताम् " तस्य भावस्त्वतलौ " इति तल्। " तत्प्रचुर " इति मन्मयोऽत्र प्राचुर्यार्थे अस्मद्शब्दात् मयट् " प्रत्ययोत्तरपदयोश्च "त्यनेनास्मच्छब्दस्य मदादेशे-अनुनासिके मन्मयताम्। उप-आङ्-उपसर्गाभ्यां गम्धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने–उपागमदिति। तस्मादिति ततः, तद्शब्दात् " पञ्चम्यास्तसिल् "इति तसिल् अत्वे पररूपे ततः। तन्मयीत्यत्रापि प्राचुर्यार्थे मयट् स्त्रीत्वविवक्षायां टित्वात् ङीपि, अनुनासिके तन्मयी। जातेति क्तान्तः।

आलिः सखी वयस्या इत्यमरः। निशा निशीथिनी रात्रिरित्यमरः। कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलमित्यमरः। कान्तः प्रियः दयितः धव इत्यमर.।

श्लो. १५. सखि, शय्यायां स्मररागमागतवतोः संपन्नयोरावयोः वार्तालिङ्गनचुम्बनानि बहुधाऽभूवँस्ततोऽनन्तरं तन्मन्मयत्वात् अहो–परा प्रेमनिलीनता प्राप्ता, तद्योग्यं (यद्वस्तु) तदहं चकार मद्योग्यमेव करणं प्रियः (चकार)।

स्मरयत्युत्कण्ठयतीति स्मरस्तस्य रागस्तम्। आगत इत्यत्र आङुपसर्गात् गमेः कर्तरि क्ते मलोपश्च, आगतशब्दात् मतुप् मस्य वः षष्ठी—द्विवचने आगतवतोः। वार्ता च आलिङ्गनं च चुम्बनं च वार्तालिङ्गनचुम्बनानि। बहुशब्दात् प्रकारार्थे धाप्रत्ययः। भूधातोर्लुङि प्रथमपुरुषबहुवचने अभूवन् इति रूपम्। अभूवन् तत इत्यत्र "नच्छव्यप्रशान्०" इति सूत्रेण नकारस्य रुत्वे अनुनासिके रेफस्य विसर्गे तस्य सत्वे अभूवँस्तत। तस्मादिति ततः तद्शब्दात् "पञ्चम्यास्तसिल्" अत्वे पररूपे तत इति रूपम्। तस्य मन्मयः तन्मन्मय इत्यत्र प्राचुर्यार्थे मयट्, मत्प्रचुरः इति मन्मयः। "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च"इति सूत्रेण अस्मच्छब्दस्य मदादेशः तन्मन्मयस्य भावस्तन्मन्मयत्वम्। भावार्थत्वप्रत्ययः। अहो इति विस्मये–आश्चर्ये। निलीनस्य भावः निलीनता भावे, तल् प्रत्ययः। प्रेम्णि निलीनता प्रेमनिलीनता। प्राप्तेत्यत्र "गत्यर्थे"ति क्तः टापि प्राप्ता। तस्य योग्यं तद्योग्यं। युज्यते इति योग्यम् "ऋहलोर्ण्यत्" अथवा योगाय प्रभवति "योगाद्यच्चे"ति यत् चकारेत्यत्र परोक्षे लिट् भवति–अत्र तु प्रत्यक्षत्वात् लिट् कथम् इत्यत्र "अत्यन्तापह्नवे लिट् वक्तव्य' इति बलेन चकारेत्यस्य प्रयोगो भवितुमर्हति। चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्। मम योग्यमिति मद्योग्यम्। क्रियते यत् तत् करणम् भावे ल्युट् (कर्मणि) बाहुलकात्।

°भूवँस्ततो—The reading in the Ms is भूयः, but that leaves a sentence without a verb, hence the amendation. प्रेमणि लीनतां–cerrect °निलिनतां into प्रेमणि लीनतां Add in the footnote after 3 Ms. प्रेमनिलिनता. This reading makes no sense. So it has been amended into प्रेमणि लीनतां।

श्लो. १६. (हे) सखि, सर्वाङ्गसङ्गिना आक्रान्तहृदयेन मोहितेन प्रियेण रतनाथेन अद्याहं मोहिता।

अङ्गन्तीति अङ्गानि, अगि गतौ पचाद्यच्, सर्वाणि च तान्यङ्गानि सर्वाङ्गाणि। सञ्जनम् सङ्गः षञ्ज सङ्गे भावे घञ् सर्वाङ्गाणां सङ्गः सर्वाङ्गसङ्गः सर्वाङ्गसङ्गोऽस्त्यस्य सर्वाङ्गसङ्गी "अत इतिठनौ"तेन सर्वाङ्गसङ्गिना। आङुपसर्गात् क्रमेः क्त दीर्घश्च आक्रान्तम्। आक्रान्तं हृदयं येन स तेन आक्रान्तहृदयेन। रमणं रतम्, रतस्य नाथो रतनाथस्तेन। अत्रास्मिन् अहनि इत्यर्थे "सद्यः परुत्" सूत्रेण अद्येत्यस्य सिद्धिर्भवति। मुह वैचित्त्ये-णिजन्तात् अप्रत्यय इडागमश्च मोहितः, स्त्रीत्वविवक्षायाम् टापि मोहिता।

श्लो. (१७) कामाहवस्योत्सवे कान्तपराजयं दृष्ट्वा कामिन्याः ललितयोः कुण्डलयोरदोयुग्मं दोलया लीलां ललौ, (कामिन्याः) रशना नितम्बस्थले चापल्यान्मधुरं रवं चकार, (कामिन्याः) करकङ्कणैर्निकणितं (कामिन्याः) नूपुरौ चरणयोः चिरं लग्नौ ॥१६॥

काम्यतेऽनेनेति कामः "पुंसि संज्ञायां घः"। आह्वानम् आहवः आङुपसर्गात् ह्वेञ् स्पर्धायाम् ' आङ्यि युद्धे०" इत्यप्, संप्रसारणं च। कामस्याहवः कामाहवस्तस्य। कान्तस्य पराजयस्तं पराजयम्—पराजयः जि अभिभवे "परच्" इत्यच्। भूयान् कामोऽस्त्यस्याः कामिनी तस्याः कामिन्याः "अत इनिठनौ" इनिः ङीप्। नितम्बस्य स्थलं नितम्बस्थलं तस्मिन्। रशतीति रशना, रश शब्दे "बहुलमन्यत्रापि"–इति युच् अनादेशे टापि रशना। चपलस्य भावः कर्म वा चापल्यम्, चपलशब्दात् "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः" ष्यञ् वृद्धिश्च चापल्यं तस्मात्। रवणं रावः, भावे घञ् तं रावम्। कृधातोः परोक्षे लिट् प्रथमपुरुषैकवचनम्। दृश् धातोः क्त्वाप्रत्यये षत्वे ष्टुत्वे च कृते दृष्ट्वेति। करयोः कङ्कणानि करकङ्कणानि तैः करकङ्कणैः। कं शुभं कणन्ति इति कङ्कणानि, कणशब्दे अच्। निकण् क्तान्ते क्तप्रत्यय इडागमश्च। लगि धातोः "क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नेति०" सूत्रेण निपातनात् लग्नेति द्विवचने लग्नौ। लाधातोः परोक्षे लिट् प्रथमपुरुषैकवचने ललौ।

संग्रामाभ्यागमाहवा इत्यमरः। रणे भङ्गः पराजयः, मह उद्धव उत्सव इत्यमरः। कामिनी वामलोचना, कुण्डलं कर्णवेष्टनम्। कङ्कणं करभूषणम्।

कुण्डलयोः ..Compare with विभ्रच्चलकुण्डलं (अमरुशतक s'lo. 3).
'मदोदोलया –The reading of the Ms. is मदोलया. In this reading one sylbable was wanting. So 'दो' is added.

श्लो. (१८) हे प्रियसखि, प्रणतिनिरतः कान्तः अद्य त्वया कस्मान्न वीक्षितः, एष सखीजनः व्यर्थाभाषः (त्वया) किं कृतः, पृथुरियमपि हि निशीथिनी पूर्णप्राया गता, कठिने तव हृदि एषः कीदृक् कोपः स्थितः (इति) कथय (त्वमिति शेष):।

प्रिया चासौ सखी प्रियसखी तत्सम्बुद्धौ प्रियसखि। प्रणतौ निरतः प्रणतिनिरतस्तस्मिन्। व्युपसर्गात् ईक्ष दर्शने कर्मणि क्तप्रत्यये दीर्घे च वीक्षित इति। आभाषणमाभाषः घञ्, व्यर्थ आभाषो यस्य सो व्यर्थाभाषः। एष चासौ सखीजनश्च एष सखीजनः।

निशीथोऽस्त्यस्याम् इनिः ङिपि निशीथिनी। गमेः क्तः मलोपः टापि गता। कीदृक्–"इदंकिमोरीश् कीः" सूत्रेण दृक् परे किम् शब्दस्य की-आदेशः। स्थाधातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति सूत्रेण क्तप्रत्ययो भवति कर्तरि "द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति" इति सूत्रेण आभाषस्येत्वे स्थितः। कुप्यते इति कुप् प्रकोपे

भावे घञ् कोपः। प्रकृष्टं नमनम् प्रणतिः। कथय कथः लोटि मध्यमपुरुषैकवचनम्। धातोः भावे क्तिन्।

प्रणतिः प्रणामः। दयितः प्रियः कान्तः इत्यमरः।

गता पूर्णप्राया—The reading of the Ms. पुण्यप्रायां makes no sense, hence the amendation. The विसर्ग in गताः is not required.

श्लो. १९. हे सखि, सुदुर्जनं विसर्जय, मानसे सज्जनं गणय, प्रियं कृतार्थय, तत्र (प्रिये) विप्रियं कुरु, सांप्रतं विरम, पतिसंगता (त्वम्) रमस्व, अद्भुतां मुदं भजस्व, कलुषतां द्रुतं संत्यज॥

दुष्टश्चासौ जनश्च दुर्जनः, सुतराम् दुर्जनः, सुदुर्जनस्तम्। संश्चासौ जनश्चः सज्जनः। कृत निष्पादितः प्राप्तो वा अर्थः प्रयोजनं येन सः कृतार्थः, कृतार्थं करोत्याचष्टे वा प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् (कृतार्थयति), तस्य लोटि मध्यमपुरुषैकवचने कृतार्थय। तस्मिन् विप्रियं विरुद्धं प्रीणातीति। विप्रियस्तम्। सम् च प्रति च एतयोः समाहारद्वन्द्वः, संप्रति-शब्दात् प्रज्ञाद्यण् वृद्धिः गणे पाठात्मान्तत्वम्। मानादिति मानतः "पञ्चम्यास्त-सिल्"। व्युपसर्गाद्रमधातोः विरम-रूपम्। पत्या संगता कलुषस्य भावः कलुषता ताम्। पातीति पतिः, पातेर्डतिः टिलोपश्च पतिः।

दुष्टः दुर्बलः अधमः। महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः। सांप्रतम् अधुना इदानीम्।

श्लो. २०. वियोगातुरां विलोचनोत्पलगलल्लोलोदका प्रेयसी प्रायः कथमपि आङ्गणभूमिकामागम्य मार्गं वीक्ष्य, (हे) सखि, अद्याप्येषः (प्रियः) न समागतः, पुनः शून्यं मन्दिरं कथं यास्यामि इत्यभिधाय मोहमगमत् तावत् प्रियः समेतः॥२०॥

वियोजनं वियोगः भावे घञ्। आतुतोर्ति इति आतुरा आङुपसर्गात् तुर त्वरणे धातोः "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कः कित्वाद् गुणाभावः, स्त्रीत्वे टापि आतुरा, वियोगेन आतुरा वियोगातुरा। लोलानि च तान्युदकानि लोलोदकानि। विलोचने उत्पले इव विलोचनोत्पले ताभ्यां गलन्ति लोलोदकानि यस्या सा, गलन्ति च तानि लोलोदकानि गलल्लोलोदकानि, विलोचनोत्पलाभ्यां गलल्लोलोदकानि यस्याः सा। आङ्गणेत्यत्र अगि गतौ "करणाधिकरणयोश्च" इतिल्युट् अङ्गनम् पृषोदरादित्वात् णत्वद् अङ्गणम्, अङ्गणस्य भूमिका ताम्। भवन्ति भूतान्यस्यामिति भूमिः, भूधातोः "भुवः कित्" इति सूत्रेण मिः, भूमिरेव भूमिका, स्वार्थे कप्रत्ययः। आङुपसर्गात् गमधातोः क्त्वाल्यपि च "वा ल्यपि" सूत्रस्य विकल्पपक्षे मकारलोपाभावे आगम्येति। अगमत्-गम् धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचनस्य रूपम्। व्युपसर्गात् ईक्ष

धातोः क्त्वाल्यपि दीर्घो, वीक्ष्येति। समागतः कर्तरि क्तप्रत्ययः। अभिधाय अभ्युपसर्गात् धाधातोः क्त्वाल्यपि। समेतः सम्-आङ्-उपसर्गाभ्याम् धातोः कर्तरि क्तप्रत्यये कृते गुणे समेत इति भवति। उपमा।

लोचने नयने नेत्रे, रक्तोत्पलं कोकनदम्, उत्पलं कमलम्। अङ्गनं (अङ्गणं) चत्वराजिरे इत्यमरः।

शून्यं कथं मन्दिरं—The reading of the Ms is शून्ये कथं मन्दिरे. These words go with the verb यास्यामि So accusative is required

This verse depicts प्रोषितभर्तृका whose lover just comes after she has swooned.

आबन्धं—affection.

श्लो. २१. हे मुग्धे, (त्वम्) इतां कठिनतामाशु त्यज, (आशु) शुभां गिरं (मह्यं) प्रयच्छ, (हे मुग्धे), विलोकनलीलया (त्वं) ममाबन्धं सफलय, (तव) चरणशरणं दासीभावं बत मामनुगृहाण, अहह तवाद्य ईदृशः विषमो मानग्रन्थिः मयि (वर्तते इत्यर्थः)॥

कठिनस्य भावः कठिनता "तस्य भावस्त्वतलौ," इति सूत्रेण तल्प्रत्ययः "तलन्तं स्त्रियाम्" ताम् कठिनताम्। लेलायनं लीला लेला दीप्तौ कण्ड्वादिः भिदाद्यङ्-प्रत्ययः पृषोदरादित्वात् लीलेत्यस्य सिद्धिः। विलोक्यते इति विलोकनम्, भावे ल्युट् विलोकनस्य लीला विलोकनलीला तया। आबध्यते अनेन इति विग्रहे बन्ध बन्धने धातोः "हलश्च" इति घञ् आबन्धस्तम्। फलेन सह (वर्तते) सफलः, सफलं करोत्याचष्टे वेति विग्रहे "प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे" णिचि वर्तमानकाले सफलयति तस्यैव लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सफलयेति रूपम्। (तव) चरणयोः शरणं यस्य स तम्। अथवा चरणौ शरणं यस्य स तम्। भवनं भावः भावे घञ् वृद्धिश्च। दास्यते दीयते भूतिमूल्यादिकं यस्मै सा दासः, दासस्य स्त्री दासी "पुंयोगादाख्यायाम्" इति ङीप्। दास्याः भावो यस्मिन् स तम् दासीभावम्। ग्रन्थते इति ग्रन्थिः "सर्वधातुभ्य इन्" ग्रथिकौटिल्ये, मानस्य ग्रन्थिः मानग्रन्थिः इदमुपपदात् दृशधातोः "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च" इति सूत्रेण कञ्प्रत्ययः। प्रोपसर्गात् दाणधातोर्लोटि मध्यमपुरुषस्यैकवचने प्रयच्छेति। अनूपसर्गात् गृहधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने अनुगृहाणेति।

कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढमित्यमरः। सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बित-माशु चेत्यमरः। ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग् वाणी सरस्वती। हेलालीलेत्यभी-भावाः क्रियाः शृङ्गारभावजा इत्यमरः। मानश्चित्तसमुन्नतिरित्यमरः।

श्लो. २२. (हे) सखि, करुणमनसाप्युक्तं भूयो विलोचनजं जलं मुक्तं, (भूयः) पत्युश्चरणद्वयं चिरं शिरसि विधृतं, क्रीडासखीषु मया व्रीडा परिहृता, तदपि तस्य प्रियस्य हृदये मनाक् दयोदयः नासीत् ।

पातीति पतिः पातेर्डतिः पतिस्तस्य पत्युः । चरणयोर्द्वयं चरणद्वयम् । करुणायुक्तं च तन्मनश्च करुणमनस्तेन करुणमनसा । विलोचनयो जातम् "सप्तम्यां जनेर्डः" विलोचनजम्, अथवा विलोचनाभ्याम् जातम् "अन्येष्वपि दृश्यते" सूत्रेण जनेर्डप्रत्ययो भवति । मुक्तम्–मुच्धातो कर्मणि क्तप्रत्ययः । विधृतम्–व्युपसर्गात् धृधातो कर्मणि क्तप्रत्ययः । पर्युपसर्गात् हृधातो क्तप्रत्ययः कर्मणि परिहृतः, स्त्रीत्वविवक्षायां टापि परिहृता । वचः कर्मणि क्तः संप्रसारणम् कुत्वं च उक्तम् । दयाया उदयः दयोदयः । क्रीडासु सख्यस्तासु क्रीडासखीषु । आसीत्–अस्धातोर्लङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम् । समुच्चयो विशेषोक्तिस्तथा सकरः ।

कारुण्यं करुणा घृणा । करुणा तु कृपायां स्यात् इति हैमः । क्रीडा लीला । वल्लभो दयितः पतिः । द्रवकेलिपारिहासाः क्रीडा खेला च नर्म च । इत्यमरः ।

श्लो. २३. परित्रस्तकुरङ्गलोचना घनस्तनी चारुमुखेन्दुमण्डला नितम्बिनी मत्तगजेन्द्रगामिनी कृशोदरी मोहकरी च इयं कामिनी (अस्ति ॥)

परित्रस्तश्चासौ कुरङ्गश्च परित्रस्तकुरङ्गस्तस्य लोचने इव लोचने यस्याः सा । घनौस्तनौ यस्या सा । चारु च तन्मुखंच चारुमुखं, चारुमुखमेव इन्दु चारुमुखेन्दु, इन्दोर्मण्डलम् इन्दुमण्डलम् चारुमुखेन्दुमण्डलं यस्याः सा । नितम्बौस्तोऽस्याः नितम्बिनी । नितम्बशब्दात् "अत इनिठनौ" सूत्रेण इनि प्रत्यये ङीपि । गम्धातोः "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" णिनिः प्रत्यये वृद्धौ ङीपि गामिनी । गजानामिन्द्रः गजेन्द्रः, मत्तश्चासौ गजेन्द्रः मत्तगजेन्द्रस्तद्वद्गन्तुं शीलमस्याः सा । कृशमुदरं यस्याः सा । मोहं कर्तुं शीलमस्या सा मोहकरी । भूयान् कामोऽस्त्यस्याः सा कामिनी ।

पर्युपसर्गात् त्रसी उद्वेगे धातोः "गत्यर्थाकर्मके" ति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्ययः । परित्रस्तः । त्रस्यति स्मेति त्रस्तः । ईदित्वादनिट् निष्ठः । "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इति ङीपि कृते घनस्तनीर्भवति । कृञ धातोः "कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्ये" इति सूत्रेण टप्रत्यये टित्वात् ङीपि मोहकरी । कामिनी इति "अत इनिठनौ" सूत्रेण इनिः प्रत्ययः ङीपि च रूपम् । उपमा रूपकं तयोः संसृष्टिः ।

त्रस्तः भीतः । पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्यां । मतङ्गजो गजो नागः, इत्यमरः ।

श्लो. २४. हे प्रिये, अखण्डमण्डलस्तवैष वक्त्रेन्दुः नयनाभिरामिकीं कान्तिं तनोति, कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरौ तवैतौ कुचौ सुवर्णपङ्केरुहकोरकाकृती (स्तः) ॥२॥

अखण्डं मण्डलं यस्य सः। वक्त्रमेवेन्दुः वक्त्रेन्दुः। नयनयोराभिरामिकी नयनाभिरामिकी ताम्। कुङ्कुमस्य पङ्कस्तेन पिञ्जरौ कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरौ। पङ्के रोहति इति पङ्केरुहम्। सुवर्णस्य पङ्केरुहं तस्य कोरकस्तद्वदाकृतिर्ययोस्तौ सुवर्णपङ्केरुहकोरकाकृती. पङ्के रोहत इति पङ्केरुहे, सुवर्णस्य पङ्केरुहे तयोः कोरकौ तद्वदाकृती अथवा ययोस्तौ सुवर्णपङ्केरुहे कोरकाकृती। (अभिरामे भवा) अभिरामशब्दात् किं 'आभिरामकी" आदिवृद्धौ ङीपि च कृते आभिरामकी ताम्। पङ्केरुहम्, ठस्येक। पङ्के रुह इत्यत्र रुह धातोः "इगुपध०' सूत्रेण कप्रत्ययः, "तत्पुरुषे कृति" सूत्रेण सप्तम्या अलुक्। उच्यतेऽनेन इति विग्रहे वच् परिभाषणे धातोः वक्त्रम् "गुध्रृवीपचिवचि" सूत्रेण त्रप्रत्ययः कुत्वं च। इन्दतीति इन्दुः, इदि परमैश्वर्ये इन्दधातोः "उणादयो बहुलम्" इति सूत्रेण उप्रत्यये इन्दुः। रूपकम् उपमा च तयोः संसृष्टिः।

कलिका कोरकः पुमान्। समग्रं सकलं पूर्णमखण्डमित्यमरः। बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु। इन्दुः कुमुदबान्धवः। शोभाकान्तिद्युतिश्छविः, इत्यमराः। काश्मीरं कुङ्कुमेऽपि स्यात्-मेदिनी।

सुवर्ण—etc. having the shape of golden lotus buds.

Compare अमरुशतक S'lo. 27.

श्लो. २५. इति भाषिणि प्रिये पाणिजैर्मुहुः स्तनाननं संस्पृशति (सति) प्रमोहिते (सति) प्रिये-अथ मन्मथकेलिलालसां तां सखीं विलोक्य सहसा सखीजनः (तां) ययौ।

पाणौ (पाण्योः) जाताः पाणिजास्तैः "सप्तम्यां जनेर्डः" इति डप्रत्यय टिलोपश्च-अथवा पाणिभ्यां जाताः इत्यत्र "अन्येष्वपि दृश्यते" सूत्रेण डप्रत्ययः, पाणिजास्तैः पाणिजैः। भाष्धातोर्णिनिप्रत्यये सप्तम्येकवचने भाषिणि, भाषते इति भाषी तस्मिन् भाषिणि। स्तनयोराननं स्तनाननम्। आनन्त्यनेन अन प्राणने करणे ल्युट्। संस्पृशति, इति संस्पृशत् शतृ तस्मिन् संस्पृशति। प्रकर्षेण मोहितः प्रमोहितस्तस्मिन् प्रोपसर्गान्मुह वैचित्त्ये धातोः क्तप्रत्यय इडागमो गुणश्च भवति. प्रमोहितस्तस्मिन् प्रमोहिते। मन्मथस्य केलिः मन्मथकेलिस्तस्याम् लालसा यस्या सा ताम्। केलनम् केलि किल क्रीडायाम् "सार्वधातुभ्यः०" गुणे केलिः। समानं ख्यायते जनैः इति सखी ताम् "सख्यशिश्वीति भाषायाम्" ङीप्। व्युपसर्गात् लोकृ दर्शने क्त्वाल्यपि विलोक्येति रूपम् भवति। हासेन सह सहासः। सखी चासौ जनश्च सखीजनः। या प्रापणे लिट् परोक्षकाले प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।

श्लो. २६. (हे) सखि, अहमावसथात् बहिर्निर्गत्य यावत् क्षणात् (क्षणं) तिष्ठामि तावत्कुतोऽप्यायातो वल्लभः पुरतः मया ददृशे। (हे) मातः, किं करवाणि। हसन् शठः पाणिकमले धृत्वा मां नीत्वा तत्र जगाम यत्र कश्चन वै जनो न जानाति॥

पाणी एव कमले पाणिकमले। आवसन्ति=आगत्य वसन्ति अस्मिन् इति विग्रहे आङ्उपसर्गात् वसधातोरथच् प्रत्ययः आवसथम् तस्मात् आवसथात्। अत्र अपादाने पञ्चमी भवति। निरुपसर्गात् गम्धातोः क्त्वाल्यपि मकारस्य लोपे "ह्रस्वस्य पिति कृति तुग्" इति सूत्रेण तुकि कृते निर्गत्यपदस्य सिद्धिर्भवति। कस्मादिति कुतः। किम्शब्दात् "पञ्चम्यास्तसिल्' इति सूत्रेण तसिल्प्रत्यये कृते "कुतिहोः" सूत्रेण किमः कुआदेशे कुतः इति रूपं भवति। आङ्उपसर्गात् याधातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्यये कृते आयात इति प्रयोगो भवति। पुरति अग्रे गच्छतीति विग्रहे पुरधातोः "बाहुलकात्" अतसुच् कृते पुरत इति रूपं भवति। दृश्धातोः कर्मणि लिट् ददृशे इति रूपम्। ददृशे इत्यत्र "अत्यन्तापह्नवे लिड् वक्तव्य" इति वार्तिकेन लिट् भवति अन्यथा परोक्षकाले लिट्लकारो भवति, अत्र परोक्षत्वाभावात् लिट्लकारो न स्यात्, चित्तविक्षेपादिनात्र पारोक्ष्यं संभवति अतो लिट् भवितुमर्हति। हसतीति हसन् इति शत्रन्तप्रयोगः। धृत्वा नीत्वा एते क्त्वान्तौ। तस्मिन् इति तत्र यस्मिन् इति यत्र इत्युभयत्र "सप्तम्यास्त्रल्" इति सूत्रेण त्रल् प्रत्ययो भवति॥

आवसथं गृहम्। वल्लभो दयितः पतिरित्यमरः। निकृतस्त्वनृजुः शठ इत्यमरः। पञ्चशाखः शयः पाणिः। सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयमित्यमरः॥

पुरूतः of the Ms. yields no sense, hence the emendation पुरतः।

श्लो. २७. शनकै (शनैः) विलासशयनात् (माम् उत्थापयन्त्याः बालायाः पुनः वस्त्रान्ते (वस्त्रान्तं) धृत्वा क नु यास्यसीति रभसादुक्त्वा धृतायाः (बालायाः) मया सस्मेरं सलज्जपुलकं वक्रीकृतभ्रूलतं सकलं मुखमुखमध्य यत्पीतं तद्विदुषां गिरां गोचरे नो॥

शनैरित्यस्याव्ययत्वात् "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः" इत्यनेन अकचि शनकैरिति रूपम्। विलसनं विलासः भावे घञ् विलासशयनं तस्मात् विलासशयनात्। उत्थापयतीति उत्थापयन्ती, उदुपसर्गात् स्थाधातोर्णिचि पुकि पूर्वसवर्णादिकार्ये कृते उत्थापि—तस्मात् शतृप्रत्यये शबादिकार्ये कृते नुमि-"उगितश्चे"ति ङीपि उत्थापयन्ती तस्याः उत्थापयन्त्याः। वस्त्रस्य अन्तम् वस्त्रान्तम्, तस्मिन् वस्त्रान्ते। कस्मिन् इति क, किम्शब्दात् "किमोऽत्" सूत्रेण अत्प्रत्यये कृते "क्वाति" सूत्रेण किमः क्वादेशे क्वेति रूपं सिद्धम्। वच् धातोः क्त्वाप्रत्यये संप्रसारणादिकार्ये कृते उक्त्वेति रूपम्। धृधातोः क्तप्रत्यये कृते कित्वाद् गुणाभावे स्त्रीत्वविवक्षायाम् टापि धृता तस्याः धृतायाः। स्मेरेण सह (वर्तते) इति सस्मेरम्। लज्जया सह (वर्तते) इति विग्रहे 'तेन सहेति तुल्ययोगे" इतिसूत्रेण समासे "वोपसर्जनस्ये"ति सूत्रेण सहस्य सादेशे सलज्जमिति सिद्धम्। पुलकाः सन्ति अस्मिन् इति पुलकम्, सलज्जं च पुलकं चेति सलज्जपुलकम्। न वक्रा अवक्रा, अवक्रा वक्रा संपद्यमानेति वक्रीकृता, भ्रूरेव लता भ्रूलता, वक्रीकृता भ्रूलता

यस्मिन् तत् वक्रीकृतभ्रूलतम् ञ्यन्तप्रयोगः। पाधातोः कर्मणि क्तप्रत्यये कृते "घुमास्थे"ति सूत्रेणेत्वे पीतम् रूपम्। उदुपसर्गान्नमधातोर्णिचि क्त्वाल्यपि च कृते "ल्यपि लघुपूर्वाद्"इति सूत्रेण णेरयादेश अनुनासिके च कृते उन्नमय्येति रूपं सिद्धम्॥ रूपकम्॥

शनकैः शनैः। स्त्रीणां विलासविब्बोकविभ्रमा ललितं तथेत्यमरः। स्यान्निद्रा शयनं स्वाप इत्यमरः॥

तद् न विदुषां गिरां गोचरे—Beyond the capacity of the speech of even the learned.

उत्का means anxious or longing for; **उक्त्वा** however would be a better reading.

Compare **अमरुशतक** s'lo. 88—**यत्पातं सुतनोर्मया मुखमिदं वक्तुं न तत् पार्यते।**

श्लो. २८. तया कान्तया चन्दने सङ्गिनि अङ्गे तु कियानेवावलेपो न धृतः, मौक्तिकगुण्ठितो हि गुणवान् हारोऽपि कण्ठे नारोपितः, अञ्जनं संगृह्य रम्ये नयने नाञ्जिते, तद्वपुषि कान्तिं किं कथयामि यां कामोऽपि नो विन्दति॥

चन्दयति इति चदि आह्लादने णिजन्तः तस्मात् ल्युट्णिलोपः चन्दनम् तस्मिन् चन्दने। सञ्जनं सङ्ग भावे घञ्, सङ्गोऽस्त्यस्येति सङ्गी, न सङ्गी असङ्गी, तस्मिन् असङ्गिनि—"अत इनिठनौ" इति इनिः। अङ्गतीति अङ्गम् अगि गतौ पचाद्यच्। तस्मिन् अङ्गे। कियान् एव इत्यत्र एवशब्दोऽप्यर्थकः, यथा शंखः पाण्डुरेव। किम्परिमाणमस्येति विग्रहे "किमिदम्भ्यां वो" इति सूत्रेण किम्शब्दात् वतुप्प्रत्ययः स्यात् वस्य च घादेशः "इदंकिमोरीश्की" सूत्रेण किमः क्यादेशः, "आयनेयीनीयियः" इति सूत्रेण घस्येयादेशे कियत् नुमि दीर्घादिकार्ये कृते कियान् इति रूपम्। अवलेपनमवलेपः भावे घञ् धृ+क्तः कर्मणि धृतः। मुच्यते स्म मुचेः क्तः कुत्वम् स्त्रीत्वे टापि मुक्ता, मुक्तैव मौक्तिकम् "विनयादिभ्यष्ठक् ठस्येकः" आदिवृद्धिश्च मौक्तिकम्, मौक्तिकेन गुण्ठितः मौक्तिकगुण्ठितः, गुठि वेष्टने कर्मणि क्तः इडागमश्च। गुणोऽस्त्यस्येति गुणवान् मतुप्। हरणं हारः घञ्। आरोपितः आङुपसर्गात् रुपधातोः णिचि कृते क्तप्रत्यय इडागमश्च। अञ्जू धातोर्ल्युटि अञ्जनम्। समुपसर्गात् ग्रहधातोः क्त्वा तस्य ल्यबादेश संप्रसारणं च संगृह्य। रम्धातो "पोरदुपधात्" सूत्रेण यत् रम्यम् द्विवचने रम्ये। अञ्जेः क्त इडागमश्च। तस्याः वपुः तद्वपुः तस्मिन् तद्वपुषि। काम्यतेऽनेनेति कामः "पुंसि संज्ञायां घः"। विद्धातुः तुदादिः "शेमुचादीनाम्" नुमि विन्दति॥ विभावना॥

मौक्तिकगुण्ठित—covered with pearls.

Compare Gujarati गण्ठवुं which means making a necklace not merely by putting the thread in the hole but in addition tying each pearl with the thread of gold or of silver or of any kind. This form is derived from the root ग्रन्थ्. I think that गुण्ठित is a Sanskritised form of गण्ठवुं though it is usually derived from गुठि वेष्टने.

हारो नारोपितः— Compare हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥

See (सुभाषितरत्नभाण्डागार Page 297, s'lo. 1; ed. 1911. निर्णयसागर प्रेस). The editor refers it to वाल्मीकि.

श्लो. २९. विरहिणी पान्थप्रिया निशीथे प्रसूनविलसच्चूतद्रुमाणां वने पान्थप्राणहरं कोकिलया कृतं रावं मुहुः श्रुत्वा मूर्च्छामाप, पुनर्विबुध्य मनसा पत्युः स्मरन्ती ततः नयनाम्बुपूरं मुञ्चन्ती सस्वरमरुदत् ॥

व्युपसर्गात् रह त्यागे धातोः "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण" इति सूत्रेण घप्रत्यये कृते विरहः, विरहोऽस्या अस्तीति विरहिणी "अत इनिठनौ" इति इनिः स्त्रीत्वे ङीपि णत्वे विरहिणीरूपम्। पन्थानं नित्यं गच्छतीति पान्थः। पथिन्शब्दस्य पन्थादेशः वृद्धिश्च। पान्थस्य प्रिया पान्थप्रिया। निशेरतेऽस्मिन् इति विग्रहे शीङ्धातोः "निशीथगोपीथावगथा" इति सूत्रेण थक्प्रत्ययः, निशीथस्तस्मिन् निशीथे। चूतानां द्रुमाश्चूतद्रुमाः प्रसूनैर्विलसन्तश्च ते चूतद्रुमाः तेषाम्। हरतीति हरः "पचाद्यच्" प्राणानां हरः प्राणहरः, पान्थस्य प्राणहरः पान्थप्राणहरस्तम्। कोकते कोक आदाने लच् प्रत्यये इत्वे च कृते गुणे कोकिलपदस्य सिद्धिः कोकिलत्वजातिविशिष्टा स्त्री कोकिला तया कोकिलया। कृतमित्यत्र कर्मणि क्तप्रत्ययः। रवणं रावः भावे घञ् तम् रावम्। श्रुधातोः क्त्वाप्रत्यये श्रुत्वेति। मूर्च्छनम् मूर्च्छा "गुरोश्च हल" इति सूत्रेण अप्रत्ययः टापि मूर्च्छा ताम् मूर्च्छाम्। आप्धातोः परोक्षे लिटि प्रथमपुरुषैकवचने आप इति रूपम्। व्युपसर्गात् बुध्धातोः क्त्वाल्यपि विबुध्येति रूपम्। पातीति पतिः पातेर्डतिः, डित्वात् टिलोपः पतिस्तस्य पत्युः॥ पत्युः स्मरन्तीत्यत्र कर्मणः शेषत्वविवक्षायाम् पतिशब्दात्षष्ठी विभक्तिर्भवति। "कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव" इति नियमात् स्मृधातोः शतृप्रत्यये शबादिकार्यं कृते नुमि "उगितश्चेति" ङीपि स्मरन्ती। तस्मादिति ततः, तद्शब्दात् "पञ्चम्यास्तसिल्" सूत्रेण तसिल्प्रत्यये अत्वे पररूपे च तत इति। नयनयोरम्बूनि तेषां पूरः तं नयनाम्बुपूरम्,। मुच्धातोः शतृप्रत्यये नुमागमादिकार्यं कृते ङीपि च कृते मुञ्चन्ती। स्वरेण सह सस्वरम् यथा स्यात्तथा। अरुदत्॥

पत्युः स्मरन्ती— Compare मेघदूत— भर्तुः स्मरसि...

श्लो. ३०. वसन्तात्यये (प्रातः) कर्णाटीकुचकोटिकेलिविलसल्लीलालसाः कासारप्रसरत्तरङ्गततिषु क्रीडाकराः मल्लीजालविलासलालनकलाः अनङ्गसङ्गरपरस्त्रीखेदविच्छेदकाः लोलाः मारुताः प्रातर्वान्ति। प्रातःकाले वान्ति ॥

वसन्तस्यात्ययः वसन्तात्ययः। कर्णाट्याः कुचौ तयोः कोटिस्तयोः केलिस्तस्मिन् विलसन्तश्च ते लीलालसाः लीलया (लीलाभिः) अलसाः कर्णाटीकुचकोटिकेलिविलसल्लीलालसाः। कासारे प्रसरन्तः कासारप्रसरन्तश्च ते तरङ्गास्तेषां ततयः तासु क्रीडां कर्तुं शीलं येषां ते क्रीडाकराः मल्ल्याः (मल्लीनां वा) जालानि तेषु विलासास्तेषु लालनकलाः लालनस्य कलाः मल्लीजालविलासलालनकलाः। नास्त्यङ्गमस्येत्यनङ्गः, अनङ्गस्य संगरः अनङ्गसङ्गरः तस्मिन् परा अनङ्गसङ्गरपरा, तत्परा चासौ स्त्री तस्याः खेदस्तस्य विच्छेदकाः। कोटयति कोट्यते वा, कुट कौटिल्ये "अच इः"। कोटिः। तन्धातोः क्तिन्प्रत्यये ततिः, बहुवचने ततयः। संगरणम् संगीर्यते वा गृशब्दे "ऋदोरप्" "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण"। क्रीडाकरा इत्यत्र "कृञो हेतु" सूत्रेण टप्रत्ययः, विच्छेदका इति ण्वुलन्तः प्रयोगः॥ अलङ्कारः परिकरः ॥

कुचौ स्तनौ। कासारः सरसीसरः ॥

मल्लीजाल—the more current form is मल्लिका—Jasminum used both for the plant and the flower.

श्लो. ३१. ग्रीष्मे धारायन्त्रतुषारसारकणिकानिर्वारितोष्मोदगम् श्रीखण्डागुरुधूपवासरुचिरं सचन्द्रोदयम् हर्म्यम् पुष्पमयी च शय्या चन्दनरसः कर्पूरकस्तूरिका, स्वच्छं वासः अकञ्चुका प्रियतमा सुखस्यास्पदम् ॥

ग्रसते रसान्, ग्रसु अदने मक्प्रत्ययः, धातोर्ग्रीभावः षुगागमश्च तस्मिन् ग्रीष्मे। धारायाः यन्त्रं तस्य तुषारस्तस्य सारस्तस्य कणिकास्ताभिर्निवारितः ग्रीष्मोदयो यत्र (यस्मिन्) तत्। धूपस्य वासः धूपवासः। श्रीखण्डश्च अगरु च धूपवासश्च श्रीखण्डागुरुधूपवासास्तै रुचिरं यत् तत्। चन्द्रेण सह सचन्द्रः, सचन्द्र उदयो यस्मिन् तत् सचन्द्रोदयम्। नास्ति कञ्चुको यस्याः सा अकञ्चुका। अतिशयेन प्रिया प्रियतमा। पुष्पप्रचुरा पुष्पमयी, प्राचुर्यार्थे मयट्, "टिड्ढाणञ्" इति ङीपि पुष्पमयी। शय्यते अस्याम् शीङ्धातोः संज्ञायाम् "समजनिषद" सूत्रेण क्यपि "अयङ्यि" सूत्रेण अयङ्, शय्या, स्त्रीत्वात् टापि। चन्दनस्य रसः। कर्पूरयुक्ता कस्तूरिका कर्पूरकस्तूरिका। कसति गन्धोऽस्या इति विग्रहे, कस गतौ खर्जादित्वात् ऊरप्रत्ययः, पृषोदरादित्वात् कस्तूरी, तस्मात् स्वार्थे कः "केऽण" इति ह्रस्वे टापि कस्तूरिका॥ तुल्ययोगिता दीपकम् ॥

Compare the following two verses of ऋतुसंहार, सर्गः १, श्लोः २ & ३.

निशाः शशाङ्कक्षतनीलराजयः क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम् ।
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम् ॥
सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु ।
सुतन्त्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥

श्रीखण्डः—Sandal or sandal tree.

श्लो. ३२. इदं नु (दयितायाः) (मुखम्) किमु नीरजं (कमलम्) (पङ्कजम्)। तद्धि (कमलम्) (पङ्कजम्) पङ्केरुहम् भवति। किमेष रजनीकरः। ननु सः (रजनीकरः) लाञ्छनेनाङ्कितः। अथ मधुराधरं चलविलोचनं सस्मितं दयितामुखम्, इति विभाव्य वल्लभः हृदि मुदं दधे ॥

नीरे जातं नीरजम् "सप्तम्यां जनेर्डः"। पङ्के रोहति इति विग्रहे, रुह प्रादुर्भावे "इगुपधे"ति कः प्रत्ययः, "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" सूत्रेण सप्तम्या अलुक्, कित्वात् गुणाभावे पङ्केरुहम्। रजनीं करोतीति विग्रहे 'कृञो हेतु०" सूत्रेण ट-प्रत्ययः, गुणे रपरे रजनीकरः। लाञ्छ्यतेऽनेनेति ल्युट् लाञ्छनम् तेन लाञ्छनेन। मधुरोऽधरो यस्मिन् तत् मधुराधरम्। चले विलोचने यस्मिन् तत्। स्मितेन सह सस्मितम्, स्मिङ् ईषद्धसने भावे क्तः। दयितायाः मुखम् दयितामुखम्। व्युपसर्गात् भू णिचि विभावि इत्यस्मात् क्त्वाल्यपि णिलोपे विभाव्येति रूपम्। धाधातोः परोक्षे लिट् दधे ॥ निश्चयान्तसन्देहः ॥

श्लो. ३३. स्निग्धः (वत्सलः) प्राणनाथः सायं (सन्ध्याकाले) मन्दं मन्दं (यथा स्यात्तथा) निभृतचरणं (यथा स्यात्तथा) तस्याः पृष्ठतोऽभ्येत्य (तस्याः) अक्षिणी करतलयुगलेन मीलयित्वा कामात् उल्लसन्त्याः प्रियायाः गल्लयोः विपुलपुलकमधरमधुरं वक्त्रम् (कामात्) एवं चुम्बति ॥

निभृतौ चरणौ यस्मिन् कर्मणि (यथा स्यात्तथा) तत् निभृतचरणम्। पृष्ठ-शब्दात् "पञ्चम्यास्तसिल्" पृष्ठतः। स्निह्यति स्मेति विग्रहे ष्णिह प्रीतौ अकर्मकत्वात् "गत्यर्थाकर्मके"ति क्तः स्निग्धः। करतलस्य युगलम् तेन। मील संकोचे णिजन्तात् क्त्वाप्रत्यये इडागमे गुणे अयादेशे च मीलयित्वेति रूपम्। उल्लसतीति उलसन्ती शतृप्रत्यये ङीबादिकार्ये कृते उल्लसन्ती तस्याः। विपुलः पुलको यस्मिन् तत् विपुलपुलकम्। अधरेण मधुरम् अधरमधुरम्। अभ्याङ् इति द्व्युपसर्गात् इण्धातोः क्त्वाल्यपि "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" इति तुकि यणि गुणे च अभ्येत्य। उच्यतेऽनेन वच परिभाषणे—"गुधृवीपचिवचि०" इति सूत्रेण त्रप्रत्ययो भवति कत्वं च वक्त्रम्। चुम्बति ॥

स्निग्धो वत्सलः इत्यमरः। वक्त्रास्ये वदनमित्यमरः ॥

Compare अमरुशतक s'lo. 19—पश्चादुपेत्यादरात्......

श्लो. ३४. (हे) सुतनु, अनङ्गकेलौ मनसि मानं मा आनय, त्वं दयितत-ममपि आलिङ्गनाद्यैः मानय, इति निगदति पत्यौ मानतो नालपन्ती सा कठिन-कुचतटे नेत्रनीरं मुमोच ॥

सुष्ठु शोभना तनूर्यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ सुतनु। नास्त्यङ्गमस्येति अनङ्गः तस्य केलिस्तस्मिन्। दय्यते स्मेति दयितः दय्धातोःक्तप्रत्ययः। अतिशयेन दयितः (प्रियः) दयिततमः, अतिशायने "तमबिष्ठनौ०" इति सूत्रेण तमप्, तम् दयिततमम्। आलिङ्गनानि आद्यानि येषु तानि आलिङ्गनाद्यानि (भोगरूपाणि वस्तूनि) तैः आलिङ्गनाद्यैः (संभोगरूपवस्तुभिः)। निगदतीति निगदन् तस्मिन् निगदति शत्रन्त-प्रयोगः। कुचयोस्तटम् कुचतटम्, कठिनं च तत् कुचतटम् च कठिनकुचतटम् तस्मिन्। नेत्रयोः नीरम् नेत्रनीरम्। मुमोच मुचेर्लिटि मुमोचेति प्रयोगः। इति निगदितपत्यौ इति पाठे तु–इति निगदितं येन स इतिनिगदितः इतिनिगदितश्चासौ पतिः इतिनिगदितपतिस्तस्मिन् इतिनिगदितपतौ इत्यनिष्टरूपापत्तिः स्यात्, अर्थात् इतिनिगदितपत्यौ इति रूपं न स्यात्, "पतिः समास एवे"ति नियमात् पति-शब्दस्य समासे एव घिसंज्ञा भवति–घिसंज्ञाभावे पत्यौ रूपं स्यात् घिसंज्ञायां तु पतौ इति रूपं भवति। इतिनिगदितपत्यौ इत्यत्र समासत्वात् घिसंज्ञा भवत्येव। आङुपसर्गात् लपधातोः शतृप्रत्यये नुमादिकार्ये कृते ङीपि आलपन्तीरूपं भवति ॥

The reading of the Ms. is दयत तमसि मं स्वं; this does not give satisfactory sense, hence the emendation दयिततममपि स्वं……

श्लो. ३५. (हे) सखि, कान्तागमस्येयमाशा अनिशं मे हृदयं रुणद्धि, तत्सङ्गमाकाङ्क्षया मयापि कथंचिदसवः धार्यन्ते इति जल्पन्ती सा पथिकाङ्गना सहसा प्रेयसः स्वरं श्रुत्वा सव्रीडा समुदेव साश्रुनयना सस्वरा सस्मरा (जाता) ॥

आगमनमागमः, कान्तस्यागमः कान्तागमस्तस्य कान्तागमस्य। अनिशम् (अहर्निशम्)। संगमनं संगम "ग्रहवृदृ०" इति "सूत्रेण" अप्प्रत्ययो भवति, तस्य संगमस्तत्संगमस्तस्य आकाङ्क्षा तत्संगमाकाङ्क्षा, तया तत्संगमाकाङ्क्षया। आङुप-सर्गात् काङ्क्षिधातोः "गुरोश्च हलः" इति सूत्रेण अप्रत्यये इदित्वान्नुमि अनुस्वारे परसवर्णे च कृते टापि आकाङ्क्षा तया। णिजन्तात् धृधातोः कर्मणि प्रत्यये धार्यन्ते इति रूपं भवति। जल्पधातो शतृप्रत्यये कृते शबादिकार्ये कृते नुमागमे च कृते ङीपि प्रत्यये जल्पन्ती इति प्रयोगो भवति। प्रशस्तान्यङ्गानि अस्या इति विग्रहे अङ्गशब्दात् "अङ्गात्कल्याणे" इति सूत्रेण नप्रत्यये कृते टापि अङ्गनेति रूपम्। व्रीडया सह (वर्तते) इति विग्रहे "तेन सहेति तुल्ययोगे" सूत्रेण "समासे वोपसर्जन-स्य" इति सूत्रेण सहस्य सादेशे सव्रीडा। मुदया सह समुदा। इव पूर्ववत्। अश्रुणा सह वर्तेते इति साश्रुणी, साश्रुणी नयने यस्या सा साश्रुनयना॥ स्वरेण (रैः) सहिता सस्वरा। स्मरेण सह सस्मरा॥ उपमा ॥

श्लो. ३६. मत्तद्विरदभूपाललीलागतिरसालसा (मदालसा) मदालिङ्गनलालसा लोलाक्षी बाला आयाति॥

द्वौ रदौ येषां ते द्विरदाः, मत्ताश्च ते द्विरदास्तेषां भूपालस्तस्य लीलागतिरिव गतिर्यस्याः सा मत्तद्विरदभूपाललीलागतिः। रसेन अलसा या सा रसालसा (अथवा मदेन अलसा या सा) (अथवा मत्तद्विरदभूपालस्य लीलागतौ (त्याः) रसस्तेन अलसा या सा)। मदालिङ्गने लालसा यस्याः सा मदालिङ्गनलालसा। लोलाक्षी लोले अक्षिणी यस्याः सा लोलाक्षी। माद्यतीति मत्त, मदी हर्षे "गत्यर्थाकर्मके" ति क्तः मत्तः। गमनं गतिः स्त्रियां क्तिन्। लोलाक्षिशब्दात् बहुव्रीहौ "सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" इति षच् अनुबन्धलोपे षित्वात् ङीष् लोलाक्षी॥ उपमा॥

श्लो. ३७. सखि, निलये विलीनः (अहम्) कान्तया सङ्गं संगम्य अनङ्गसरसैरङ्गैः रतपाण्डित्यं तनोमि॥

विशेषेण लीनः विलीनः, लीधातोः क्तप्रत्ययः, "आदितश्चे" ति सूत्रेण निष्ठा तकारस्य नकारः। रसैः सहितानि सरसानि। अनङ्गस्तेन (हेतुना) अथवा तद्वत्सरसानि तैः अनङ्गसरसैः। रमणं रतम्, रतस्य पाण्डित्यम् रतपाण्डित्यम् "नपुंसके भावे क्तः", समुपसर्गात् गम्धातोः क्त्वाप्रत्यये तस्य ल्यबादेशे कृते "वा ल्यपि" सूत्रस्य विकल्पपक्षे संगम्येति रूपम्। सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, पण्डा सञ्जाता अस्येति विग्रहे तदस्य संजातं "तारकादिभ्य इतच्" पण्डितस्तस्य भावः कर्म वेति विग्रहे "वर्णदृढादिभ्य ष्यञ्चे" ति सूत्रेण ष्यञ्प्रत्यये वृद्धिश्च पाण्डित्यम्।

श्लो. ३८. भूयोभिर्दिवसैः देशान्तरादागतोऽयं प्रियतमः उचितं विद्वानपि जडताम् तनोति (अथवा विद्वानपि जडतां तनोति इति उचितम् नोचितमित्यर्थ इति काकुः)। आलापमग्नो जनः (सखीजनः परदुःखानभिज्ञत्वात् आलापमग्न इत्यर्थः। इत्यालोच्य विलासलोलनयना कामाकुला कामिनी निशि कान्ते सखीजने चैव तनौ दीपे दृशं संदधे॥

अन्यो देशो देशान्तरं तस्मात्। अतिशयेन प्रियः प्रियतमः। वेत्तीति विद्वान्। जडस्य भावो जडता ताम्। आलापे मग्नः आलापमग्नः। विलसनं विलासः, विलासेन लोले नयने यस्याः सा विलासलोलनयना। कामेन आकुला कामाकुला। देशान्तरादित्यत्रापादाने पञ्चमी। आगत इत्यत्र "गत्यर्थे" ति कर्तरि क्तः। विद्वान् इत्यत्र विदधातोः क्वसुनुमादिकार्ये कृते विद्वान्। प्रियतम इति तमबन्त। जडतेति तलन्तः प्रयोगः। आलपनमालाप इति घञन्तः प्रयोगः। मग्नः मगि नुमि अश्वि मग्नः। आलोच्येति ल्यबन्तः। विलास इति घञन्तः। संदधे इति परोक्षे लिट्॥ विशेषोक्तिः काकुश्च, उपमा॥

तनोति जडतामालापमग्नो जनः etc. Compare अमरुशतक s'lo. 77.

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीत्वा कथंचिद्दिनं
वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति।
दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्ग्या रतिकातरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥

श्लो. ७९. (अहम् गच्छामीति (उक्त्वा) निवसतेः समुत्थितः कान्तः मया समालम्बितः विश्रब्धं (यथा स्यात्तथा) परिरब्ध एव हि (कान्तः) ततो निर्घृणः (हे)मातः यावदहं चिन्तातुरा विलासशयने सुप्तास्मि तावत् हसता तेन शनैः समेत्य वक्त्रे चिरं चुम्बिता (अहम्) ॥

न्युपसर्गात् वस्धातोश्तिप्प्रत्यये कृते शबादिकार्ये कृते निवसतिः तस्याः निवसतेः। समुत् इति द्व्युपसर्गात् स्थाधातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति सूत्रेण क्तप्रत्यये "द्यति स्यति०" सूत्रेणेत्वे पूर्वसवर्णादिकार्ये कृते समुत्थित इति रूपम्। समालम्बित इति कान्तप्रयोगः। तस्मादिति ततः पञ्चम्यास्तसिल्प्रत्यये कृते अत्वे पररूपे च कृते तत इति रूपम्। निर्गता घृणा यस्य (यस्मात्) स निर्घृणः। यात इति कान्तप्रयोगः। चिन्तनं चिन्ता चिति स्मृत्याम् "चिन्ति पूजि०" सूत्रेण अङि टाबि चिन्ता चिन्तया आतुरा चिन्तातुरा। विलसनं विलास भावे घञ्, विलासस्य शयनं विलासशयनं तस्मिन विलासशयने। शीङ् स्वप्ने भावे ल्युट् शयनम्। सुप्तेति कान्तप्रयोगः। समाङुपसर्गात् इण्धातोः क्त्वाल्यपि तुकि गुणे समेत्येति रूपम्। श्रन्भुधातोः क्तप्रत्यये नलोपे तकारस्य धकारे जश्त्वे विश्रब्धम् इति। पर्युपसर्गात् रभे क्तप्रत्यये तकारस्य धकारे जश्त्वे परिरब्धः। हसतीति हसन् तेन हसता शत्रन्तप्रयोगः॥

Compare अमरुशतक s'lo. 82.

श्लो. ८०. (हे) मुग्धे, विभ्रमालोकदक्षं स्निग्धं नयनं रचय, (हे) सरले (वक्त्रे) कोमलालापरम्यां वाणीं रचय, अथ रङ्गत्सुललितमङ्गम् प्राणनाथे भावय, त्वं मिथः संकथासु भूयो भूयो तदनुगा भव॥

विगतो भ्रमो यस्मात् यस्य वेति सविभ्रमः, आलोकनमालोकः (घञ्) विभ्रमश्चासावालोकश्च इति विभ्रमालोकस्तस्मिन् दक्षम् विभ्रमालोकदक्षम्। नीयतेऽनेनेति नयनम् ल्युट्प्रत्ययो भवति। आलपनमालापः भावे घञ्। कोमलश्चासावालापश्च तेन रम्या ताम् कोमलालापरम्याम्। स्निह प्रीतौ इत्यस्मात् क्तप्रत्यये स्निग्धमिति रूपम्। उच्यतेऽनेनेति विग्रहे वच्धातोः 'गुधृवीपचिवचि" सूत्रेण त्रप्रत्यये कुत्वे च वक्त्रम् तस्मिन् वक्त्रे। रगिधातोः रङ्गति इति विग्रहे शतृप्रत्यये रङ्गत् इति रूपम्, रङ्गत् च तत्सुललितम् च रङ्गत्सुललितम्। भावयेत्यत्र भूधातोः णिजन्तात् लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपम्। अनु पश्चाद् गच्छती-

ति अनुगा, तस्य अनुगा तदनुगा, अनूपसर्गात् गमधातोः "अन्येभ्योऽपि०" सूत्रेण डप्रत्यये टिलोपे टापि अनुगेति रूपं सिद्धम् ॥

श्लो. ४१. (हे) विधिज्ञे, प्रेमहारी कीदृक् भयकोपः तव मनसि वसति यः (कोपः) चाटुवाचां विधिज्ञे नम्रे पत्यौ न विरमति, एभिः कृत्यैरसुजनजनं पूर्ण-कामं मा कृथाः, सुजनं हर्षोत्कर्षं गमय (प्रापय), तं पतिं स्वीकुरुष्व ॥

विधिं जानातीति विधिज्ञा. व्युपसर्गात् ज्ञाधातोः ' इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः " इति सूत्रेण कप्रत्यये आकारस्य लोपे स्त्रीत्वविवक्षायां टापि तत्सम्बुद्धौ विधिज्ञे । (विधिज्ञे इति पतिविशेषणे विधिं जानातीति विधिज्ञस्तस्मिन् विधिज्ञे ।) प्रेम हर्तुं शीलमस्येति अथवा प्रेम हरतीति प्रेमहारी, हृधातोर्णिनिः वृद्धिः, दीर्घादिकार्ये कृते प्रेमहारी पदस्य सिद्धिर्भवति । चाटवश्च ताः वाचश्च तासां चाटुवाचाम् । विरमतीत्यत्र "व्याङ्परिभ्यो रम" इत्यनेन परस्मैपदं भवति । न सुजनोऽसुजनः, असुजनश्चासौ जनश्च असुजनजनस्तम् । कमनं कामः, पूर्णे कामो यस्य सः पूर्णकामस्तं पूर्णकामम् । कृधातोरात्मनेपदे लुङि मध्यमपुरुषैक वचने माङ्योगे "न माङ्योगे" इत्यनेन अडागमाभावे मा कृथा इति रूपम् । शोभनो जनः सुजन. । उत्कर्षणमुत्कर्षः, कृषेर्घञ् गुणश्च । हर्षस्य उत्कर्षः हर्षो-त्कर्षस्तं हर्षोत्कर्षम् । गमधातोर्णिजन्तात् लोटि मध्यमपुरुषैकवचने गमय इति रूपम् । स्वीकुरुष्व लोटि मध्यमपुरुषस्यैकवचनस्य रूपम । विशेषोक्तिः ॥

कृत्यैरसजनजनं—makes no sense; hence amendation कृत्यैर् असुजनजनं

श्लो. ४२. (हे) हरिणाक्षि, आक्रान्तस्तना इयं हारलतिका उच्चैस्तटा गङ्गा कमला त्वन्नीलरोमावली किल कालिन्दी विलसति, वक्रोक्त्या च सुललिता सरस्वती (विलसति) । मध्ये मिथः गङ्गाः एताः (नद्यः) त्वयि तीर्थम् (तीर्थभावम्) उपागताः (तस्मात्) त्वमेव परं सेव्याऽसि ॥

हरिणस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा हरिणाक्षी तत्सम्बुद्धौ हे हरि-णाक्षि-हरिणाक्षीशब्दात् "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" इति सूत्रेण षच्प्रत्यये षित्वात् ङीपि हरिणाक्षी । आक्रान्तौ स्तनौ यया सा आक्रान्तस्तना । उच्चैस्तटौ यस्या सा उच्चैस्तटा गङ्गा । हारस्य लतिका हारलतिका । नीला चासौ रोमावली, च नीलरोमावली, तव नील रोमावलीति त्वन्नीलरोमावली । कलिन्द-स्येयं कालिन्दी-इदमर्थेऽण् आदिवृद्धिः ङीप् च भवति । वक्रा चासौ उक्तिश्च, वचधातोः परिभाषणे क्तिन् प्रत्यये संप्रसारणादिकार्ये कृते उक्तिरिति रूपं भवति. तया वक्रोक्त्या । सरोऽस्त्यस्या इति विग्रहे मतुप्प्रत्यये मकारस्य वकारे कृते ङीपि

च कृते सरस्वतीपदस्य सिद्धिर्भवति। सुष्ठु ललिता सुललिता सरस्वती। सञ्जनं सङ्गः भावे घञ्। तीर्यतेऽनेनेति विग्रहे तॄधातोः "पातॄ०" उणादिसूत्रेण थक् प्रत्यये ईत्वे रपरत्वे च तीर्थम्। सेवितुमर्हा सेव्या षेवृ सेवायां धातोः "अर्हे कृत्यतृचश्च" सूत्रेण ण्यति स्त्रीत्वविवक्षायां टापि सत्वे सेव्येति पदं सिद्ध्यति। गम्यते प्राप्यते मोक्षार्थिभिर्या सा गङ्गा, गम्धातोः "गम्ययोः" सूत्रेण गन्प्रत्ययः, ततः स्त्रीत्वे टापि गङ्गा। उपमा रूपकं काव्यलिङ्गम् ॥

In this verse the author compares the pearlnecklace to the Ganges, the darkish hair on the body is compared to Yamunā, while the Speech is called Sarasvatī All the three constitute in the Nāyikā, a tīrtha, so she becomes सेव्या

The same simile is repeated in S'lo 43

श्लो. ४३ (हे) प्रियतमे, (ते) वक्षोजाचलयातिनी विमला मुक्तालता जाह्नवी ते ललिता रोमाली कलिन्दतनया च प्रोर्ध्वं प्रयातेव तत्र मध्ये संगतयोस्तयोः(नद्योः) सौम्यं सङ्गमम् (अथच) संप्राप्तं मनसोऽखिलमभिलाषं च सकाशो ह्यहं सेवे (अथवा) सौम्ये तयोः संगमे संप्राप्तं मनसोऽखिलमभिलाषं सेवे ॥

अतिशयेन प्रिया प्रियतमा तत्सम्बुद्धौ प्रियतमे, "अतिशायने तमबिष्ठनौ" सूत्रेण तमप्। वक्षसि जातौ वक्षोजौ "सप्तम्यां जनेर्डः" वक्षोजावेवाचलौ, तत्र यातिनी वक्षोजाचलयातिनी. याधातोः "नपुंसके भावे क्तः" तस्मात् कान्तात् "अत इनिठनौ-"इनिः ङीप् च यातिनी। विगतं मलं यस्याः, विगतो मलो यस्याः सा विमला, मल धारणे अच्। मुक्तैव लता मुक्तालता (मुक्तावली)। जह्नोरपत्यं स्त्री जाह्नवी अपत्याऽर्थेऽण् वृद्धिगुणौ-अवादेशे ङीपि च कृते जाह्नवी। रोम्णामाली रोमाली, आ अलति अल्यते वा "सर्वधातुभ्य इन्" कृदिकारात् ङीष् वा। कलिन्दस्य तनया कलिन्दतनया। प्रकर्षेणोर्ध्वं प्रोर्ध्वं, प्रयाता इव. प्रयाति स्मेति प्रयाता, कर्तरि क्तः। सोम इव सौम्यः, "शाखादिभ्यो यः" ततः "प्रज्ञाद्यण्" वृद्धिश्च. सौम्यस्तम्। संगमनं संगमस्तम्। "ग्रहवृद्" इत्यप्। संगतयोरित्यत्र कर्तरि क्तः। सम् प्रेति द्व्युपसर्गात् आप्धातोः क्तप्रत्ययः। अभिलषणम् अभिलाषः, लष कान्तौ घञ् तम्। षेवृ सेवने परोक्षे लिट् सेवे। रूपकम् उत्प्रेक्षा च ॥

सौम्यो बुधे मनोज्ञे स्यादनुग्रे-इत्यमरः।

श्लो. ४४. (हे) मातः, मे (मम) परः शरीरयष्टिमा न (नास्तीत्यर्थः). मम भ्रूलता न वक्रा, मम भीतिपरायणं (चेतः) अस्ति, मे (मम) लोचने चले स्थाने, न हृदि गोलकौ स्तनौ निर्यातौ, मम नितम्बस्थली अतिगुर्वी जाता, (मम) मध्यं क्वापि गतम्, मम चरणावपि मन्दां गतिं संश्रितौ।

माति गर्भोऽस्यां, मा माने "नप्तृनेष्टृ०" इति उणादिसूत्रेण तृप्रत्ययः, मातृ-प्रथमैकवचने माता तत्सम्बुद्धौ मातः। पटोर्भावः पटिमा "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इति सूत्रेणेमनिच् टिलोपे दीर्घे पटिमा। शरीरस्य पटिमा शरीरपटिमा। भ्रूरेव लता भ्रूलता। वञ्चतीति (वञ्चु गतौ) "स्फायितञ्चि०" सूत्रेण रक्, स्त्रीत्वे टापि वक्रा। भीतिः क्तिन्प्रत्ययान्तः, भीतेः परायणं, भीतिपरायणम् भीतियुक्तमत्यर्थः। लोच्यते-आभ्याम् ल्युट् लोचने (लोचृ दर्शने)। निरुपसर्गात् यातेः क्तः (कर्तरि) द्विवचने निर्यातौ। नितम्बस्य स्थली नितम्बस्थली। गुरुशब्दात् "वोतो गुणवचनात्" सूत्रेण ङीप् यणि गुर्वी। किम् शब्दात् "किमोऽत्" इत्यत् "क्वाति" सूत्रेण किम् शब्दस्य क्वादेशः। गम्धातोः क्तिन् गतिस्तां गतिम् मलोपश्च। गतम् क्तान्तप्रयोगः। समुपसर्गात् श्रिधातोः क्तः, संश्रितौ॥

श्लो ४५. (हे) बाले, स्वहृदये निरन्तरं धैर्यं धेहि, (बाले) भयं मा कृथाः किल (निश्चयेन) वयःसंधौ स्त्रीणामीदृगपाटवं किल समुत्पद्यते, तन्त्रज्ञः गद-लक्षलक्षणविधौ, तथा निदाने दक्षः, (तथा) कलासु कुशलः ते (तव) दयितो वैद्य-स्तस्मै तनुं दर्शय॥

स्वस्य हृदयं स्वहृदयं तस्मिन् स्वहृदये। निर्गतमन्तरात् अथवा निर्गतमन्तर-मस्मिन् इति निरन्तरम्। दधाति धीयते वा इति विग्रहे धाधातोः "सुसूधाञ्-गृधिभ्यः क्रन्" "घुमास्थे"ति ईत्वम्। धीर इति धीरस्य भावः कर्म वेति ष्यञ् धैर्यम्। धाधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने "घ्वसोरेद्धौ" इति सूत्रेण एत्वे अभ्यासलोपे च धेहि रूपम्। कृधातोरात्मनेपदे लुङि मध्यमपुरुषैकवचने माङ्-योगेऽडागमाभावे सिचो लुकि मा कृथाः। तन्त्रं जानातीति तन्त्रज्ञः "इगुपधे"ति कः, आकारस्य लोपः तन्त्रज्ञः। वयसः सन्धिः वयःसन्धिस्तस्मिन् वयःसन्धौ। वयते वय गतौ वेति वा वी गत्यादौ असुन् प्रत्ययः वयः। संधानम् सन्धिः धाञः "उप-सर्गे घोः किः" इति किप्रत्ययः सन्धिः। स्त्यायन्ति गर्भो आसु इति स्त्रियस्तासां स्त्रीणाम्, स्त्यायतेर्ड्रट् टिलोपः यलोपः टित्वात् ङीप्। पटोर्भावः कर्म वेति विग्रहे पटुशब्दात् "इगन्ताच्च लघुपूर्वात्" इत्यण् वृद्धौ गुणे च पाटवम्, न पाटवम-पाटवम्। पद्गतौ दिवादिः। समुद् इति द्व्युपसर्गात् पद् धातोः श्यनि समुत्पद्यते। गदस्य लक्षं (लक्षसंख्याकम्), लक्ष्यते इति लक्षम् घञ् गदलक्षम्। तस्य लक्ष-णम्, लक्षयतीति ल्युट् लक्षणम् तस्य विधिस्तस्मिन् विधीयतेऽनेनेति विधिः, "उपसर्गे घोः किः" इति किप्रत्ययः॥

लक्षं व्याजशरव्ययोः संख्यायामपि इत्यमरः।

A dialogue between an innocent young woman describing the signs of youth as if they were the symptoms of some disease, reassured by an elderly woman that these things happen when one passes from childhood to youth–and that her lover would be the proper physician to cure the trouble.

श्लो. ४६. प्रोषितभर्तृकाहृदि वह्निं भृशं सन्दीपयन् संभोगिनीनामनङ्गरङ्गजनितामङ्गग्लानिं हरन् वने जम्बूतरूणां फलं परिणतिं नयन् सुस्पर्शः व्यूढप्रौढकदम्बपुष्पसुरभिश्च ग्रीष्मान्तवातो ववौ ॥

प्रोषितः भर्ता यस्याः सा प्रोषितभर्तृका तस्याः हृद् तस्मिन्. प्रोषितभर्तृशब्दात् बिभर्तीति भर्ता भृ तृच "न दृयृतश्चे"ति कप् टापि प्रोषितभर्तृका (अथवा प्रोषिताः भर्तारः यासां तास्तासां हृदि)। संदीपयन् समुपसर्गात् दीपेर्णिचि शतृप्रत्ययः। संभोक्तुं शीलं यासां ताः संभोगिन्यस्तासां संभोगिनीनां "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" इति णिनिः। अनङ्गस्य रङ्गस्तेन जनिता ताम्-रज्यत्यस्मिन् इति रङ्गः। "अकर्तरि चे"ति सूत्रेण घञ् कुत्वं च। जनितेति तृजन्तः। हरतीति हरन्। अङ्गतीति अङ्गम्। नयतीति नयन् अङ्गस्य ग्लानिस्ताम्। जम्बूनां तरवः जम्बूतरवः तेषां जम्बूतरूणाम्। तरन्त्यनेनेति विग्रहे "भृमृशीङ्" इत्युप्रत्यय. तरवः। शोभनो स्पर्शो यस्य स सुस्पर्शः। व्यूढाश्च प्रौढाश्च ते कदम्बाश्च व्यूढप्रौढकदम्बाः, व्यूढप्रौढकदम्बानां पुष्पाणि तेषां सुरभिर्यस्मिन् सः। ग्रीष्मान्तस्य वातः। ग्रसतेरस्मात् मक्प्रत्ययः धातोर्ग्रीभावः षुगागमश्च।

जंबूतरूणां etc. The ripen of Jambu fruits at the end of summer and in the beginning of monsoon is a significant feature of the Season in Gujarat.

श्लो. ४७. वर्षागमे पद्धतौ उत्कलिकाकुलान् पान्थानतितरामुत्साहयन् कान्तासंगमरागिणां धृतिमतामङ्गे स्मरं जीवयन् जातीकोरकजालमाशु दलयन् मेघोन्मुक्तपृषत्सु सिक्तवसुधागन्धं वहन् मारुतो वाति ॥

वर्षणमस्त्यासु इति विग्रहे अर्श आदित्वादचि टापि वर्षाः। आगमनमागमः आङुपसर्गात् गम्धातोः "ग्रहवृदृ०" सूत्रेण अप्प्रत्ययो भवति। वर्षाणामागमः वर्षागमस्तस्मिन् वर्षागमे। पादाभ्यां हन्यते-इति विग्रहे क्तिन्प्रत्यये "हिमकाषिहतिषु चे"ति पद्भावे पूर्वसवर्णे च कृते पद्धतिः तस्यां पद्धतौ। उत्कलिकाभिराकुला उत्कलिकाकुलास्तान्। पन्थानं नित्यं गच्छन्तीति पान्थास्तान् पान्थान्। उत्साहयतीति उत्साहयन् इति शत्रन्तप्रयोगः। रञ्जनं रागः रज्यतेऽनेनेति वा रागः रञ्ज् धातोः भावे करणे वा घञ् नलोपो वृद्धिश्च। संगमनं संगमः "ग्रहवृदृ" सूत्रेण अप्प्रत्ययो भवति। कान्तानां संगमः कान्तासंगमस्तस्मिन् रागिणस्तेषां कान्तासंगमरागिणाम्—रागाः सन्ति येषाम् ते रागिणः, रागिण इत्यत्र रागशब्दात् "अत इनिठनौ"-इति सूत्रेण इनिप्रत्ययः। धरणं धृतिः क्तिन्प्रत्यये धृतिः येषाम् अस्तीति धृतिमन्तस्तेषाम् धृतिमताम्। जीवय

नीति जीवयन्। जातीनां कोरकाः तेषां जालम्। दलयतीति दलयन्। मेघैरुन्मुक्तानि पृपन्ति तैः सुसिक्ता वसुधा मेघोन्मुक्तपृपत्सुसिक्तवसुधा तस्या गन्धस्तम् वहतीति वहन्। स्वभावोक्तिः ॥

पद्धति (f.) = पद्+हति – (lit.) foot-stroke; a way; a path. जाति or जाती–(f.) The reading of the Ms जाता is obviously a scribe's error for जाती. Jasminum grandiflorum Compare Gujarati जाई

श्लो. ४८. कामालसः कोऽपि धन्यः पुमान धीरं मृदङ्गोपमम् अलं ध्वानं जलधरे कुर्वति गर्विनालिनिवहे परं गानं गायति (सति) वध्वा सार्धमतुलमगारजालं संश्रित्य तडिदङ्गनागणकृतं नृत्यं सानन्दं समुद्वीक्षते ॥

कामेन अलसः कामालसः। धनाय हित इति विग्रहे धनशब्दात् यत्प्रत्यये धन्य इति। पुनातीति पुमान्। मृदङ्गस्य उपमा यस्य सः मृदङ्गोपमस्तम्। ध्वननं ध्वान इति घञन्त, तं ध्वानम्। करोतीति कुर्वन् तस्मिन् कुर्वति। जलस्य (जलानां वा) धरः जलधरस्तस्मिन् जलधरे। गर्विताश्च ते अलयश्च तेषां निवहस्तस्मिन्। गीयते यत् तद् गानं गै ल्युट् आत्वे गानम्। गायतीति गायन् तस्मिन् गायति। वध्वा इत्यत्र "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति सूत्रेण तृतीया भवति। न विद्यते तुला यस्य तदतुलम्। अगारस्य जालम् अगारजालम्। समुपसर्गात् श्रिधातोः क्त्वाल्यपि संश्रित्येति। तडितः एव अङ्गनास्तासां गणः तडिदङ्गनागणस्तेन कृतम्। प्रशस्तानि अङ्गानि आसामिति अङ्गनाः "अङ्गात्कल्याणे" इति न प्रत्ययः टापि अङ्गना। आनन्देन सह सानन्दम्। समुद्वीक्षते इति त्र्युपसर्गात् ईक्षधातोः वर्तमानकाले समुद्वीक्षते रूपम्। रूपकम् ॥

मुमान – of the Ms. is clearly a scribe's error.

अगार (n) – rarely m. House-apartment जाल a latice window. अगारजालं—a latice window of a house. This verse discribes charmingly the advent of the monsoon as observed by two lovers from the latice window of their house The metaphor of music and dance is beautifully worked out.

श्लो. ४९. (हे) सुभग, यतः(यत्र) स मम प्राणाधिनाथः तत्रैव त्वरितं व्रज। तव वियोगे प्रियमपि जीवितं प्राय एतया त्यक्तम्। त्रैलोक्ये ईदृशमिदं प्रतिरूपं भूयोऽपि नो लभ्यते इति (हेतोः) त्वद्ध्यानलग्ना अपि प्राणाः तां न परित्यजन्ति ॥

यत इत्यत्र "सार्वविभक्तिकतसिल् इतराभ्योऽपि दृश्यते" इति सूत्रसामर्थ्याद् यत्रेत्यर्थे तसिल्। त्वरते स्मेति विग्रहे ञित्वरा संभ्रमे त्वर इति

धातोः 'गन्यर्थाकर्मक०'' इति क्तप्रत्ययः, ''रुष्यमत्वरे'' ति सूत्रेण इडागमे त्वरितमिति शीघ्रमित्यर्थः। व्रजधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने व्रजेति रूपम्। वियोजनं वियोगः तस्मिन् वियोगे। जीवधातोः क्तप्रत्यय इडागमश्चेति जीवितम्। त्यज्धातोः क्तप्रत्ययः कुत्वञ्च त्यक्तम्। त्रयो लोकाः इति विग्रहे ''चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम्'' इति वार्तिकेन ष्यञ् प्रत्ययः आदिवृद्धिश्च त्रैलोक्यम्. तस्मिन् त्रैलोक्ये। इदम् उपपदाद् दृशधातोः ''त्यदादिषु'' इति सूत्रेण कञ्प्रत्यये कृते ''इदंकिमोरीश्की'' सूत्रेण इदम्शब्दस्य ईशादेशे शकारस्येत्संज्ञायाम् ईदृशमिति। अतिक्रान्तं रूपम् अतिरूपम्। लभ्यते इति कर्मणि रूपम्। तव ध्यानमिति त्वद्ध्यानं. त्वद्ध्याने लग्नाः त्वद्ध्यानलग्नाः प्राणाः तां श्रियं न परित्यजन्ति॥

यतः = यस्मिन्

The reading of the Ms. त्विति does not yield good sense

श्लो. ५०. पतद्गच्छन्निरालम्बान आर्तिनोऽसून समम् (दतम्) रक्ष, अद्य (त्वया इदं वस्तु) वो (युष्माकं) भर्तुः(भर्त्रे) निवेद्यम्। प्राणनाथमिहानय।

पतन्तीति पतन्तः, गच्छन्तीति गच्छन्तः, निर्गतः आलम्बो येषां ते निरालम्बाः. पतन्तश्च (ते) गच्छन्तश्च (ते निरालम्बाश्च (ते) पतद्गच्छन्निरालम्बास्तान्। अस्यन्ते अस्यन्ति वा असु क्षेपणे ''शृस्वृस्निहि०'' इत्युप्रत्ययः, असवस्तान् असून्। आङुपसर्गात् ऋधातोः क्तप्रत्यये अनुबन्धलोपे आ ऋत इत्यत्र ''उपसर्गादृति धातौ'' इति वृद्धौ रपरे अतिशब्दात् इनिप्रत्यये आर्तिन् तस्य द्वितीयाबहुवचने आर्तिनः। असून् समं दत्तं वा रक्ष। न्युपसर्गाद्विद्धातोः, ''ऋहलोर्ण्यत्'' सूत्रेण ण्यति निवेद्यम् निवेदितुमहम्। त्वया इदं वस्तु वो भर्तुः युष्माकं भर्त्रे, बिभर्ति भरतीति भर्ता तस्य भर्तुः भृ तृच भर्ता, अस्मिन् इति। इह इदम्शब्दात् ''इदमो हः'' सूत्रेण हप्रत्ययः।

पतद्–The whole compound qualifies असून्

माधवो–The reading of the Ms. makes no sense

श्लो ५१. नीरधरानीके निजनाथानता नारी नेत्रनीरजनिर्गतम् अनेकधारं नीरं निरस्यति (दूरीकरोति)॥

नीराणां धरः नीरधरस्तस्यानीकस्तस्मिन्। अननम् अनीकः अन गतौ अन प्राणने वा। ''अनीकादकश्च'' इति वार्तिकेन साधुः। निजनाथे आनता निजनाथानता आङुपसर्गात् नमेः कर्तरि क्तो मलोपश्च स्त्रीत्वविवक्षायां टाप् आनतेति। नरस्य नुर्वा जातिरिति विग्रहे ''नृनरयोर्वृद्धिश्चे'' ति वर्तिकेन ङीप् वृद्धिश्च नारी,

अथवा नुर्नरस्य वा धर्म आचारोऽस्याः ' नृनराभ्यां च वा " इति वार्तिकेन अञ् वृद्धिः ङीप् नारी। नीरे जाते नीरजे ' सप्तम्यां जनेर्डः ' नेत्रे एव नीरजे नेत्रनीरजे। नेत्रनीरजाभ्यां निर्गतं नेत्रनीरजनिर्गतम्। अनेको धारो यस्य तत्. धार्य्यते इति धारः धृधातोः णिजन्तात् घञ् अथवा धाराया इदम् धारम्. इदमर्थेऽण्. अनेकं धारं यस्य तत् नीयते इति नीरम् " स्फायि० " इत्युणादिसूत्रेण रकं नीरम्। दिवादि असु क्षेपणे निरुपसर्गात् अस् धातोः वर्तमानकाले निरस्यति दूरीकरोतीत्यर्थः ॥

जलधरासारवर्षणम् इति हैमः। अनीकोऽस्त्री रणे सैन्ये इति मेदिनी ॥

श्लो. ५२ घर्मान्ते दोलत्कुण्डलचञ्चलांशुललितैः (लसितैः) आलोकिताशामुखः (प्रकाशिताशामुख इत्यर्थः) कङ्कणमेखलाकलकलव्याजेन धीरध्वनिं कुर्वन् जलबिन्दुसुन्दरतरः (स्त्रीपक्षे घर्मजलबिन्दुः) तापापनोदाय शक्तोऽयं सुपयोधरः तव (त्वद्रूपघनः) घनः मे चेतः प्रमोदं नयेत् ॥

जिघर्त्यङ्गमनेन इति विग्रहे घृ क्षरणदीप्तयोः घृधातोः " घर्म " सूत्रेण घर्म-इति निपातितः, घर्मस्यान्तः घर्मान्तस्तस्मिन्। कुण्डते कुण्ड्यते वेति विग्रहे वृषादित्वात् कलच् कुण्डलम् द्विवचने। दोला इव आचरतीति दोलति. दोलन्ती च ते कुण्डले दोलत्कुण्डले. ते एव चञ्चलांशूनी. तयोर्ललितानि तैः (लसितानि तैर्लसितैरित्यर्थः)। आशायाः मुखम् आशामुखम् (अथवा आशानां मुखानि आशामुखानि) आलोकितानि प्रकाशितानि आशामुखानि येन सः आलोकिताशामुखः। कं शुभं कणति कणशब्दे अच् मखी गतिं लातीति मेखला पृषोदरादित्वात् साधुः कङ्कणे च मेखला च कङ्कणमेखलाः तासां कलकलः तस्य व्याजस्तेन। धीरश्चासौ ध्वनिश्च धीरध्वनिस्तम्। करोतीति कुर्वन्। अतिशयेन सुन्दरः सुन्दरतरः। जलानां बिन्दवस्तैः सुन्दरतरः। पयसां धरः पयोधरः शोभनश्चासौ पयोधरश्चः सुपयोधरः। अपनुतीति अपनोदः पचाद्यच् तापस्यापनोदस्तस्मै। तव घन इत्यत्र ' राहो शिरः " इतिवत् अभेदे षष्ठी। अपह्नुतिः रूपकं समासोक्तिश्च ॥

घनः सुपयोधरः—There is a pun on घनः सुपयोधरः।

श्लो. ५३. (हे) सखि, उत्तुङ्गावतिपीवरावतितरां पीनौ सुतीक्ष्णाननौ वक्षोजन्मशिलोच्चयौ (स्तनौ स्तः) परं कृशाङ्गि मम कान्तः (तम् कान्तम्) यदि उपरि (स्तनयोरुपरि) कुर्यां (तदा मरुता हेतुना) प्रयाति (दूरीभवति), इत्थं तनौ न विद्यते (स कान्तः) तस्यैव (कान्तस्यैव) प्रतिपालनप्रवणया मया रात्रिर्नीयते ॥

उद् ऊर्ध्वं तुङ्गौ उत्तुङ्गौ उदुपसर्गात् तुजि हिंसायाम् धातोः उत्तुज्यते इति विग्रहे घञ् कुत्वं च उत्तुङ्गौ । प्यायेते इति विग्रहे प्यैङ्धातोः 'छित्वर०' इति सूत्रेण निपातौ । पीवरौ अतिशयितौ पीवरौ अतिपीवरौ । अतितराम् (अत्यन्तम्) प्यायेते स्मेति विग्रहे ओप्यायी वृद्धौ धातोः "गत्यर्थाकर्मके" ति सूत्रेण क्तप्रत्ययः "ओदितश्च" इति नत्वम, प्यायः पीति पीनौ । सुतेजयत इति विग्रहे तिजे"दीर्घश्च"ति सूत्रेण स्नक्प्रत्यये सुतीक्ष्णे इति. सुतीक्ष्णे आनने ययोस्तौ सुतीक्ष्णाननौ । वक्षसि जन्म (वक्षसो वा जन्म) ययोस्तौ वक्षोजन्मानौ । शिलानामुच्चयौ शिलोच्चयौ वक्षोजन्मानावेव शिलोच्चयौ वक्षोजन्मशिलोच्चयौ । कृशमङ्गं यस्य सः कृशाङ्गः । तं कान्तं यदि स्तनयोरुपरि कुर्यां तदा तत्र स्थातुं न शक्नोति । अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् "इदमस्थमु०" । तनोति तन्यते वेति तनुः तन् धातोः "भृमृशि०" सूत्रेण उप्रत्ययः तनुस्तस्याम् तनौ । प्रवन्ते गच्छन्ति सुखार्थं जना-अत्रेति विग्रहे प्रुङ् गतौ धातोः ल्युट् अनादेशश्च: स्त्रीत्वविवक्षायां टापि प्रवणा तया प्रवणया । प्रत्युपसर्गात्पाल्धातोर्ल्युट् प्रतिपालनम्, प्रतिपालने प्रवणा तत्परा प्रतिपालनप्रवणा तया । नीधातोः कर्मणि प्रत्यये नीयते इति रूपस्य सिद्धिः । रूपकम् ॥

The reading of the Ms. उत्तङ्गावती is obviously a scribe's error. Similarly also लीलोच्चयौ in the second line.

विद्यते—The reading of the Ms विध्यते can also be made to yield the some sense विद्यते seems better.

नेत्थं तनो should be read as नेत्थं तनौ

श्लो. ५४. (हे) सखि, तृष्णातुरो दयितः ममाधररसं नितान्तं पीत्वा मनसि यत् प्रमदं प्रपेदे तेन (प्रमदेन) (कारणेन) मत्तः सः मुक्तांशुकां वश्यां मां परिरभ्य तदुचितं च समाचचार ।

तृष्णया (तृष्णाभिर्वा) आतुरः तृष्णातुरः, तर्पणम् तृष्णा ञितृष् पिपासायाम्, तृष्धातोः 'तृषिशुषिरसिभ्यः किन' इति नः स्त्रीत्वात् टाप् तृष्णा । आङुपसर्गात् तुर त्वरणे धातोः "इगुपधे"ति कः आतुरः । दय्यते स्मेति दयितः दय्धातोः क्तप्रत्ययः इडागमश्च । अधरस्य रसः अधररसस्तम् । पाधातोः "घुमास्थे" ति ईत्वे पीत्वा । प्रकृष्टो मदः प्रमदः प्रोपसर्गात् मदीधातोः "प्रमदसंमदौ हर्षे" इति सूत्रेण अ-प्रत्ययः प्रमदस्तम् । प्रपदेर्लिटि प्रपेदे । अंशुभिः काशते इति अंशुकम् काशृ दीप्तौ 'अन्येभ्योऽपि डः' मुक्तमंशुकं यस्याः सा मुक्तांशुका ताम् । वशमधीनत्वं गता इति वश्या तां वश्याम् । वशंगत इति यत् स्त्रीत्वे टाप् वश्या ताम् । पर्युपसर्गात् रम्धातोः क्त्वाल्यपि परिरभ्येति रूपम् । समाचचार-समाङिति द्व्युपसर्गात् चरधातोः लिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम । वचधातोः कितच्प्रत्ययः उचितं युक्तम्, तस्योचितं तदुचितम् ॥

श्लो. ६२. (हे) भीरु, ते वक्त्रेन्दुश्छत्रम् आसीत्, ईषत्स्मितमपि कुसुमम् आसीत्, (ते) भ्रूलता चापम् आसीत्, (ते) नेत्रद्वन्द्वं शरौघाः (आसन), श्रवण परिलसत्कुण्डले दीपमाला (आसीत्), (तव) वक्षोजौ हेमकुम्भौ (आस्ताम्), (ते) जघनपरिसरे सिंहासने (आस्ताम्), हृदिभुवा (ते) वपुषि बाल्यं जित्वा यौवनस्याभिषेकः अतिचक्रे ॥

बिभेतीति भीरूः, "ऊङुत" इति ऊङ् दीर्घे भीरूस्तत्सम्बुद्धौ भीरु। भियः क्रुक्लुकनौ क्रुः भीरुः। इन्दतीति इन्दुः, वक्त्रमेवेन्दुः, वक्त्रेन्दुरेव च्छत्रम्। भ्रूरेव लता भ्रूलता। नीयेते आभ्याम् इति नेत्रे, नेत्रयोर्द्वन्द्वम् (युगलम्)। शराणामोघाः शरौघाः। परिलसन्ती च ते कुण्डले च परिलसत्कुण्डले, श्रवणयोः परिलसत्कुण्डले श्रवणपरिलसत्कुण्डले कुण्डतेः वृषादित्वात् कलच कुण्डलम्। मां (लक्ष्मीम्) लातीति माला, दीपानां माला दीपमाला। वक्षसि जातौ वक्षोजौ "सप्तम्यां जनेर्डः।" हेम्नः कुम्भौ हेमकुम्भौ। जघनयोः परिसरे जघनपरिसरे, परितः सरतः अत्रेति परिसरे। सिंहचिह्निते आसने सिंहासने, मध्यमपदस्य लोपः। हृदि भवतीति हृदिभूस्तेन हृदिभुवा, कर्तरि क्विप् "हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्" इत्यनेन सप्तम्या अलुक्। बालस्य भावः बाल्यम्, ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। यूनो भाव इति विग्रहे "हायनान्तयुवादिभ्योऽण् वृद्धिश्च अन्" इत्यनेन सूत्रेण प्रकृतिभावः यौवनम् तस्य यौवनस्य। जिधातोः क्त्वाप्रत्ययः जित्वा कित्वात् गुणाभावः। अभिसिञ्चनमभिषेकः अभ्युपसर्गात् सिच्धातोर्भावे घञ् गुणे षत्वे कुत्वे च अभिषेकः। अत्युपसर्गात् कृधातोः कर्मणि लिट् प्रथमपुरुषैकवचने अतिचक्रे ॥ रूपकम् ॥

Correct कुसुम into कुसुमं.

श्लो. ६३. ह्रिया विनमिताननना मदविलोकलोलेक्षणा निगूढविहितस्मिता सपुलका किमप्यनीदृशम् (अनिर्वचनीयम्) भावमाबिभ्रती नवोढा वधूः रजनिवृत्तसंपृच्छकं सखीजनं मदनातुरं चकार ॥

(ह्रिया) विनमितमाननं यस्याः (यया) सा विनमितानना। मदेन विलोकः मदविलोकः, मदविलोकेन लोले ईक्षणे यस्याः सा मदविलोकलोलेक्षणा, विलोक्यते इति विलोकः भावे घञ्। निगूढं यथा स्यात्तथा, विहितं (कृतं) स्मितं यया सा निगूढविहितस्मिता। पुलकेन सह (वर्तते) इति सपुलका। नवोढा चासौ वधूश्च नवोढावधूः। निगूह्यते स्मेति विग्रहे न्युपसर्गात् गुह्धातो क्तप्रत्यये ढत्वादिकार्ये च कृते निगूढपदस्य सिद्धिः। व्युपसर्गात् धाधातोः क्तप्रत्यये "दधातेर्हिः" सूत्रेण धास्थाने ह्यादेशे विहितमित्यस्य सिद्धिः। स्मिधातोः क्तप्रत्यये स्मितमिति रूपम्। नेदृशम् अनीदृशम् (अनिर्वचनीयमित्यर्थः)। आबिभर्तीति-

आबिभ्रती, आङुपसर्गात् भृधातोः शतृप्रत्यये द्वित्वादिकार्ये कृते "नाभ्यस्ता-च्छतु" रिति सूत्रेण नुम्निषेधे ङीपि कृते-आबिभ्रती। संपृच्छतीति संपृच्छकः, रजन्याः वृत्तं रजनिवृत्तम्, रजनिवृत्तस्य संपृच्छकः रजनिवृत्तसंपृच्छकस्तम्। मदनेन आतुरः मदनातुरस्तं मदनातुरम्। वृत्यते स्मेति विगृहे वृत्धातोः क्तप्रत्यये वृत्तमिति। चकारेति कृधातोः परोक्षकालस्य रूपम्॥

अनीदृशं भावं=अलौकिकं भावम्।

श्लो. ६४. दयितः तृष्णातरलितः सन् रतान्ते रम्यां कान्ति दधत्- इति (एवम्) अलकविगलन्माल्यमलसम् स्मरक्रीडाजन्यश्रमजलपृष-न्मिश्रतिलकं संमीलन्नयनकमलं चारुकान्तावक्त्रं सुचिरं पपौ (सुचिरं यथा स्यात्तथा)॥

दय्यते स्मेति दयितः क्तप्रत्ययः। तरलमस्य संजातमिति विग्रहे इतच्प्रत्यये तरलित इति रूपम्। तृष्णया तरलितः तृष्णातरलितः। रमणं रतम् रतस्यान्तः रतान्तस्तस्मिन् रतान्ते रम्यते इति रम्या। "पोरदुपधा" दिति यत्प्रत्यये स्त्रीत्वे टापि रम्या ताम् रम्याम्। दधाति इति दधत्। मालायै हितं माल्यम्। अलकेभ्यः विगलत् माल्यं यस्मिन् तत् अलकविगलन्माल्यम्। स्मरयत्युत्कण्ठयतीति स्मरः. स्मरस्य क्रीडा स्मरक्रीडा, क्रीडनम् क्रीडा क्रीडधातोः "गुरोश्च हलः" इति सूत्रेण अप्रत्ययः स्त्रीत्वात् टाप् क्रीडा, श्रमस्य जलं श्रमजलम् स्मरक्रीडया जन्यं श्रमजलं स्मरक्रीडाजन्यश्रमजलं. तस्य स्मरक्रीडाजन्यश्रमजलस्य। पृषन्ति तैर्मिश्रः तिलको यस्मिन् तत्। लसतीति लसः पचाद्यच्, न विद्यते लसः कान्तिर्यस्मिन् तत् अलसम्। नयने एव कमले नयनकमले, संमीलन्ती नयनकमले यस्मिन् तत् समीलन्नयन-कमलम्। कान्ताया वक्त्रं कान्तावक्त्रम्। चरति चित्ते इति चारु, चर्धातोः उण प्रत्ययः वृद्धिश्च। पातेर्लिट् पपौ॥ रूपकम्॥

श्लो. ६५. (हे) कान्ते यामि, (हे) वल्लभ याहि, भवतो मार्गे शिवं वर्तताम्, (हे) पान्थ देशान्तरात् पुनरपि त्वं गृहं त्वरितमायाहि, अस्माकमिति भवितव्यता (त्वया) विहिता (कृता) इत्युक्त्वा सनिःश्वासया लोचनवारिहारि-कुचया प्रस्थितः प्राणेश्वरो रुद्धः॥

अन्यो देशो देशान्तरम् तस्मात् देशान्तरात्, अपादाने पञ्चमी। पन्थानं नित्यं गच्छतीति पान्थस्तत्सम्बुद्धौ, 'पन्थो ण नित्यम्' इति णः "पथः पन्थ" इति पथिन् शब्दस्य पन्थादेशः। निःश्वासेन सह (वर्तते) या सा सनिःश्वासा, तया सनिःश्वा-सया। लोचनयोः वारीणि तैः हारिणौ कुचौ यस्याः सा लोचनवारिहारिकुचा तया लोचनवारिहारिकुचया। ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः, ईश्धातोः 'स्थेश-भासपिसकसो वरच्" इति सूत्रेण वरच् प्रत्ययः, ईश्वरः, प्राणानामीश्वरः प्राणेश्वरः।

भूधातोः भविष्यत्काले भावे "शक्यार्हप्रेष्यानुज्ञाप्राप्तकालार्थे चे"ति तव्यप्रत्ययेन भवितव्यम्, भवितव्यस्य भावः भवितव्यता "तस्य भावस्त्वतलौ इति तल्। वृत्धातोर्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने वर्तंतामिति रूपम्। प्रोपसर्गात् स्थाधातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्यये "स्येतिस्यति" इति सूत्रेण आकारस्येत्वे प्रस्थित इति रूपम्। रुधूधातोः कर्मणि क्तः रुद्धः। त्वरते स्मेति विग्रहे त्वर् धातोः "गत्यर्थाकर्मके" ति कर्तरि क्तः, इडागमे त्वरितम् ॥

शिवं—the reading of the Ms. शवं is not bad Seeing a coffin while going out is regarded as a good sign in some part of the country, specially in Gujarat, but the emendation is made because शिवं is more conventional; e.g. शिवास्ते पन्थानः सन्तु। Compare अमरु० s'lo. 62:—

तन्व्या बाष्पजलौघकल्पितनदीपूरेण रुद्धः प्रियः ॥

श्लो. ६६ अहो तस्याः स्नेहम्, अहो (तस्या) रूपम्, अहो (तस्याः) कान्तिम्, अहो (तस्याः) रतिम्, अहो (तस्याः) लीलाम्, अहो (तस्याः) वाणीं कदा लभेमहि ॥

स्नेहनम् स्नेहः ष्णिह प्रीतौ घञ् सत्वे गुणे स्नेहस्तम् स्नेहम्। अहो इति विस्मये=आश्चर्ये-अव्ययम्। रोपयति (विमोहयति) इति विग्रहे रुपु विमोहने धातोः पचाद्यच् दीर्घे, यद्वा रूप रूपकरणे अच् रूपम्। कम् धातोः णिङभावपक्षे क्तिन् अनुनासिकस्येति दीर्घे कान्तिस्तां कान्तिम्। रम्यते अनया इति रमेः क्तिन् मकारस्य लोपे रतिस्ताम् रतिम्। लीलादीप्तौ "भिदाद्यङ्" यद्वा "अप्रत्ययात्" इत्यप्रत्ययः—पृषोदरादित्वात् साधुः लीला ताम् लीलाम्। वाणीत्यत्र "कृदिकारात्" इत्यनेन ङीप् वाणी तां वाणीम्, वण्शब्दे वण्यते इति वाणिः इञ्प्रत्ययः ङीप् वाणी तां वाणीम्। कस्मिन् काले इति कदा, किम् शब्दात् "सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा" इति सूत्रेण दाप्रत्ययः। किम्शब्दस्य-"किमः कः" सूत्रेण कादेशः कदा। लभधातोरात्मनेपदे विध्याद्यर्थे लिङि उत्तमपुरुषबहुवचने लभेमहि इति रूपम् ॥ उदात्तालंकारः ॥

श्लो. ६७. योषितां रूपस्य अपूर्वः (अनिर्वचनीयः) कोऽपि महान् महिमा (अस्ति), नेत्रगोचरवर्तिना येन (रूपेण) योगिनो मोह्यन्ते ॥

युष्यन्ते योषन्ति वेति विग्रहे युष्धातोः इतिप्रत्यये गुणे योषित इति तासां योषिताम्। रोपयति (विमोहयति) इति विग्रहे रुपु धातो अच्प्रत्यये 'अन्येषामपी-" ति दीर्घे रूपमिति तस्य रूपस्य। मह्यते (पूज्यते) इति महान्, महतो भाव इत्यर्थे

महत्शब्दात् "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वे" ति सूत्रेण इमनिच् ततः टेरित्यनेन टिलोपे महिमा (माहात्म्यम्)। नीयेते आभ्यामिति नेत्रे, नीधातोः त्रप्रत्ययः, नेत्रयोः गोचरं नेत्रगोचरं, नेत्रगोचरं वर्तते इति नेत्रगोचरवर्ती, तेन नेत्रगोचरवर्तिना। योजनानि योगाः भावे घञ्, योगाः सन्ति एषामिति योगिनः। मुहेर्णिजन्तात्कर्मणि प्रत्यये वर्तमानकाले प्रथमपुरुषस्य बहुवचनम्-मोह्यन्ते॥

श्लो. ६८. लावण्यसलिलापूरा विलासलहरीयुता चललोचनमीना कामतरङ्गिणी-इयं बाला (अस्तीत्यर्थः)॥

लवणा त्विट् सैव (लवणैव) चतुर्वर्णादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् वृद्धिश्च लावण्यम् (सौन्दर्यविशेषः), लावण्यमेव सलिलम्-अथवा लावण्यान्येव सलिलानि लावण्यसलिलानि, तानि आपूरयतीति विग्रहे पचाद्यच् स्त्रीत्वविवक्षायां टापि लावण्यसलिलापूरा। विलसनानि विलासाः भावे घञ्, विलासा एव लहर्यः विलासलहर्यः विलासलहरीभिर्युता विलासलहरीयुता। लोच्येते आभ्यामिति लोचने, लोचृ दर्शने ल्युट्, चले च ते लोचने च चललोचने, चललोचने एव मीनौ यत्र सा चललोचनमीना। तरतीति तरङ्गः तरतेः "तरत्यादिभ्यश्चे" ति अङ्गच् प्रत्यये गुणे रपरे तरङ्गः, तरङ्गोऽस्त्यस्या इति विग्रहे "अत इनिठनौ" इति सूत्रेण इनिप्रत्यये ङीपि णत्वे च कृते तरङ्गिणी, काम एव तरङ्गिणी कामतरङ्गिणी। इयं बाला-(अस्तीति)॥ समस्तवस्तुविषयकं रूपकम्॥

This is a complete रूपक, in which the young woman is compared to a river of love. Her beauty is water and her विलास is लहरी and her moving eyes are the fish.

श्लो. ६९. (हे) गतघृण, चरणपतितां संलग्नाङ्गीं भवत्यनुरागिणीम् एतां मुग्धां भवान् कथमवमन्यते इति (एवम्) तत्सख्या निगदितः प्रणयान्वितः प्रियस्तु मानं मुक्त्वा विविधकरणैः (विविधोपायैः) प्रियां समरञ्जयत्॥

गता घृणा (दया) यस्य स गतघृणस्तत्सम्बुद्धौ गतघृण। चरणयोः पतिता चरणपतिता ताम्। संलग्नान्यङ्गानि यस्याः सा संलग्नाङ्गी- अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्य" मिति वार्तिकेन ङीपि संलग्नाङ्गी ताम् सलग्नाङ्गीम्। अनुरज्यतेऽनेनेति अनुरागः, रञ्जधातोः "अकर्तरि च कारके संज्ञाया" मिति घञ् नलोपे कुत्वे वृद्धौ अनुरागः, अथवा अनुरञ्जनमनुरागः भावे घञ्-अनुरागोऽस्त्यस्या इति विग्रहे "अत इनिठना" विति सूत्रेण इनिप्रत्यये ङीपि णत्वे च कृते अनुरागिणी ताम्। भवति भवद्विषये अनुरागिणीम्। तस्याः सखी तत्सखी तया तत्सख्या। न्यगादीति निगदितः, न्युपसर्गात् गद्धातोः कर्मणि क्तप्रत्यये इडागमे च निगदित इति रूपम्। प्रणनयम् प्रणयः, नीधातोः 'एरच्' इति सूत्रेण अच्प्रत्यये गुणे अयादेशे णत्वे च कृते प्रणय इति रूपम्, प्रणयेनान्वितः प्रणयान्वितः। प्रीणा-

श्लो. ५५. इयं जलदमण्डली नभः मलिनतां प्रापयेत्, प्रथमयौवनाऽतिमदनातुरा कामिनी गृहे (वर्तते), अहं तु कुसुमबाणबाणार्दितः पथि निष्ठितः, परं विरहनिर्घृणः विधिः अहो कथं विधाता ॥

जलं ददातीति जलदः, "आतोऽनुपसर्गे कः" जलोपपदात् दाधातोः कप्रत्ययः आकारस्य लोपः। मडि भूषायाम् मण्डयति भूषयति, मण्डली, मण्डधातोः कलच् प्रत्ययः मण्डलम्, मण्डलमस्त्यस्या इति—गौरादित्वात् ङीष् मण्डली। मलिनस्य भावः "तस्य भावस्त्वतलौ" इति तल्, मलिनता ताम्। प्रोपसर्गात् आप्धातोः णिजन्तात् विध्यर्थे लिङ् प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्। यूनो भावः इति विग्रहे "हायनान्तयुवादिभ्योऽण् वृद्धिश्च यौवना अन्" इत्यनेन प्रकृतिभावः, प्रथमं यौवनं यस्याः सा प्रथमयौवना। अतिशयितश्चासौ मदनश्च अतिमदनस्तेन आतुरा अतिमदनातुरा। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् तस्मिन् गृहे, ग्रहधातोः "गेहे कः" सूत्रेण कप्रत्ययः संप्रसारणं च। बणनम् बाण बण्शब्दे घञ्, कुसुमं बाणोऽस्येति कुसुमबाणः, बणशब्दे स्वार्थण्यन्तः पचाद्यच्, कामः। कुसुमबाणस्य बाणाः कुसुमबाणबाणास्तैरर्दितः। विरहविषये विरहे निर्गता घृणा (दया) यस्य (यस्माद्वा) सः विरहनिर्घृणः। न्युपसर्गात् स्थाधातोः कर्तरि क्तप्रत्ययः इत्वे "दयतिस्यति०" सूत्रेण इत्वे उपसर्गादिति षत्वष्टुत्वे निष्ठितः॥ विधाता लुट्लकारस्य रूपं विधास्यतीत्यर्थे। विधा-किः विधिः ॥ काव्यलिङ्गम् ॥

श्लो. ५६. सुस्पर्शाः शालिगोपी (प्त्री) विकचकुचतटाभोगयोगाभिरामाः प्रोन्मीलत्सप्तपर्णप्रसवपरिमलप्राप्तसौभाग्यभोग्याः केदारोद्दारिवारिप्रसृमरकुमुदान्दोलनप्रौढलीलाः पान्थस्त्रीणामनिष्टाः प्रियरतसुखदाः शारदाः वाताः वान्ति ॥

शोभनः स्पर्शो येषां ते सुस्पर्शाः (घञन्तः) शालीनां गोप्यः (गोप्त्र्यः) तासांविकटाश्च ते कुचतटाश्चस्तेषामाभोगाः (घञन्तः) तेषां योगाः (घञ्प्रत्ययान्तः) तैरभिरामाश्च ये-(मनोहरा इत्यर्थ)। प्रोन्मीलन्ति काण्डे काण्डे, सप्तपर्णानि येषां (येषु वा) ते, तेषां प्रसवाः ("ऋदोरप्") तेषां परिमलाः। मल्यन्ते कर्मणि घञ् तैः प्राप्तं सौभाग्यं येषां ते, तेन (हेतुना) भोग्याश्च ये। केदाराणामुद्दारीणि च तानि वारीणि च तेषु प्रसृमराणि च तानि कुमुदानि च, तेषामान्दोलनानि तेषु प्रौढाः लीलाः येषां ते। पन्थानं नित्यं गच्छन्तीति पान्थाः, पथिन्—शब्दात् "पन्थो ण नित्यम्" इति णप्रत्ययः "पथः पन्थ" इति सूत्रेण पथिन्-शब्दस्य पन्थादेशः वृद्धिश्च। पान्थानां स्त्रियः, पान्थस्त्रियस्तासा पान्थस्त्रीणाम्। न इष्टा अनिष्टाः, कर्मणि क्तः। रमणानि रतानि भावे क्तः, प्रियाणां रतानि प्रियरतानि तेषु। सुखं ददतीति सुखदाः "आतोऽनुपसर्गे कः" इति कप्रत्ययः। शरदि भवाः इति विग्रहे "तत्र भव" इति सूत्रेणाण् वृद्धिश्च शारदाः। वाताः वान्ति। गोपायन्तीति गोपाः, पचाद्यच्, गोपानां स्त्रियः गोप्यः, गोपायन्तीति गोप्त्र्यः, गुप्धातोः तृचि ङीपि गोप्त्र्यः ॥ स्वभावोक्तिः ॥

शारदाः वाताः—the autumnal winds.

श्लो. ५७. (हे) कान्ते, कान्तांशुजृम्भितविलोचनकैरवोऽपि एषः त्वद्वक्त्रशारदनिशाकरः मामतनून्माद्य निकामं मोहयते, अतो मम मनो मदनाधिरूढं कुर्यात् ॥

कम्यते स्मेति विग्रहे कमु कान्तौ धातोः णिङभावे क्तप्रत्ययो दीर्घश्च कान्तः, स्त्रीत्वविवक्षायां टापि कान्ता. तत्सम्बुद्धौ कान्ते। कान्ताश्च ते अंशवश्च तैर्जृम्भितानि विलोचनानि एव कैरवाणि येन सः। तव वक्त्रम् इति त्वद्वक्त्रम्। उच्यतेऽनेनेति वक्त्रम्, वचेः त्रप्रत्यये वक्त्रम्। शरदि भवः शारदः, "तत्र भवः" इति सूत्रेण भवार्थेऽण् वृद्धिश्च शारदः। निशायाः करः निशाकरः, शारदश्चासौ निशाकरश्च शारदनिशाकरः। त्वद्वक्त्रमेव शारदनिशाकरः त्वद्वक्त्रशारदनिशाकरः। तन्यते-तनु विस्तारे धातोः ' तनिचरि० इत्युणादिसूत्रेण उप्रत्यये तनुः। काये त्वचि स्त्री स्यात् त्रिष्वल्पे विरले कृशे-इति विश्वमेदिन्यौ। न तनु अतनु। उदुपसर्गाद् मदीधातोर्णिचि णिजन्तात् क्त्वाल्यपि उन्माद्येति रूपम्। मदयतीति मदनः घटादिः ल्युट्, मदने (मदनविषये) अधिरूढम् अध्युपसर्गात् रुहेः कर्तरि क्तः। निकामम् अत्यन्तम्। मुहेर्णिजन्ताद् वर्तमाने लट् मोहयते ॥ रूपकम् ॥

कान्तांशु—the moon as well as the lustre of the beloved.

श्लो. ५८. (हे) प्रिये, निश्वासेन त्वधरमधुरं त्वं कपोले धत्से यत्र (ते कपोले) रुचिररचनाः वल्ल्यः पाणिना संमृज्यन्ते (दूरीक्रियन्ते) पत्युर्वाक्यं श्रुतमपि तत् (वाक्यं) त्वन्मनस्तापहन्तृ न) ते (तव) सजडहृदये एतौ मन्युमानौ जातौ ॥

निःश्वसनं निश्वासः घञ्, तेन निश्वासेन। अधरस्य मधुरत्वमधरमधुरत्वम्, मधुरस्य भावः मधुरत्वम् "तस्य भावस्त्वतलौ" इति त्वप्रत्ययः। रुचिराश्च ताः रचनाश्च, रच् प्रतियत्ने चुरादिः "ण्यासश्रन्थो युच" इति युचि "युवोरनाकौ" इति अनादेशे टापि बहुवचने रुचिररचनाः। वल्ल धातो "सर्वधातुभ्य इन्" इति सूत्रेण इन् बहुवचने वल्ल्यः। श्रुधातोः क्तप्रत्ययः श्रुतम्। तव मनस्त्वन्मनस्त्वन्मनसः तापहन्तृ त्वन्मनस्तापहन्तृ- तपनं तापः घञ्, हन्तीति हन्तृ, तापस्य हन्तृ। जडेन सह सजडं, सजडं च तद् हृदयं च सजडहृदयं तस्मिन्, अथवा सजडं हृदयं यस्या सा सजडहृदया तत्सम्बुद्धौ। मन्युश्च मानश्च मन्युमानौ। धाधातोः वर्तमानकाले मध्यमपुरुषैकवचने आत्मनेपदे धत्से इति रूपम् ॥

वल्ल्यः—see the note on पत्रावलि of s'lo. 1.

श्लो. ५९. परिमलमिलितालिमालतीपुष्पमाला, सुरभिघुसृणमिश्रं चन्दनालेपनं, तुहिनकिरणरश्मिश्चञ्चला चापि दोला काममलोका (च) कामिनी शरदि सुखविभूत्यै (भवतीत्यर्थः) ॥

परिमलेन मिलिताः परिमलमिलिताः, परिमलमिलिताः अलयो यस्यां सा परिमलमिलितालिः, अल भूषणे "सर्वधातुभ्य इन्" अलिः। मां लक्ष्मीं लतति (वेष्टयति) लत्धातोः मूलविभुजादित्वात् कः गौरादित्वात् ङीप् मालती। मालत्याः पुष्पाणि तेषां माला मालतीपुष्पमाला, मां लक्ष्मीं लातीति माला लाधातोः कप्रत्ययः स्त्रीत्वात् टाप् माला। सुरभीणि च तानि घुसृणानि च तैः मिश्रम्, घुष्यते स्तूयते घुष्धातोः बाहुलकात् ऋणक् प्रत्ययः। ल्युडन्तः पृषोदरादित्वात् साधुः। चन्दनरालेपनं चन्दनालेपनं, चन्दयति चदि आह्लादने ण्यन्तात् ल्युट् चन्दनम्। तुहिनाः किरणाः यस्य सः तुहिनकिरणस्तस्य रश्मिः तुहिनकिरणरश्मिः। कीर्य्यन्ते विक्षिप्यन्ते रश्मयः अस्मात् इति किरणाः 'कॄपॄ०" इत्युणादिसूत्रेण कः। चञ्चु गतौ अच्, चञ्चं लाति इति विग्रहे कप्रत्ययः टापि चञ्चला। दोलयतीति दोला दुल उत्क्षेपे "पचाद्यच्" टाप् दोला। काम्यतेऽनेनेति कामः "पुंसि संज्ञायां घः" इति घः, तेन कामेन लोला कामलोला। सुखस्य (सुखानां वा) विभूतिस्तस्यै, व्युपसर्गात् भूधातोः स्त्रियां क्तिन् ॥ दीपकं स्वभावोक्तिश्च ॥

घुसृण—saffron: This is a word of rare occurance. It is used by Kashmiri poets. See बिल्हण's विक्रमाङ्कदेवचरितम्, XI-1.

श्रीहर्ष the author of नैषधीय० who is fond of using rare words also uses this word. See नैषधीय० VIII-80. See also for unusual words, the vocabulary of श्रीहर्ष given by Handuqiui.

श्लो. ६०. (हे) सखि, आदौ प्रणयेन कलहो बभूव, शयने पराङ्मुखतया कश्चित्कालः प्रयातः, पुनर्विचिन्त्य पत्युर्मुखं मयैक्षि, तेन (पत्या) इदमहम् अतिमात्रमधरे गृहीता ॥

समानं ख्यायते अनैरिति सखी तत्सम्बुद्धौ सखि। आदीयते (प्रथमं) गृह्यते इति आदिः आङुपसर्गात् दाधातोः "उपसर्गे घोः किः" इति सूत्रेण किप्रत्ययः आकारलोपश्च आदिरित्यस्य सिद्धिः, तस्मिन् आदौ। प्रणयनं प्रणयः णीञ् प्रापणे धातोः परश्च तेन प्रणयेन। कलस्य हननम् कलहः, अन्येभ्योऽपि डप्रत्ययः कलहः। बभूवेति परोक्षकालस्य रूपम्। पराञ्चति अनभिमुखो भवतीति विग्रहे, अञ्चु गतिपूजनयोः धातोः क्विनि प्रत्यये नलोपादिकार्ये कृते पराक् इति प्रयोगो भवति, पराक् मुखमस्येति पराङ्मुखस्तस्य भावः, भावार्थे तल् स्त्रीत्वे च पराङ्मुखतया। शय्यते अत्र इति शयनम्, अधिकरणे ल्युट्

प्रत्ययः, तस्मिन् शयने। प्रोपसर्गात् याधातोः "गत्यर्थे" ति कर्तरि कः प्रयातः। व्युपसर्गात् चिन्तधातोः क्त्वाल्यपि च कृते विचिन्त्येति रूपं भवति। ईक्ष दर्शने धातोः कर्मणि लुङि पेक्षीति रूपम्। मात्रा (स्तोकम्) तामतिक्रान्तम् "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये" ति ह्रस्वे अतिमात्रम्। गृहधातोः कर्मणि क्तप्रत्यये संप्रसारणे इडागमे दीर्घे टापि च कृते गृहीतेति रूपम् ॥

°ह्रमिय should be corrected as °हर्मियं The reading of the Ms ह्रमीय is obviously an error.

Compare अमरु० s'lo. 23.

श्लो. ६१. पुरुषेषु (विषयेषु) कामिन्याः भ्रूवल्लीकोदण्डीयति, (कामिन्याः) नयनं च मार्गणीयति, (कामिन्याः) वेणिचटुला लसल्लोलं (यथा स्यात्तथा) कृपाणीयति, (कामिन्याः) हारावली प्रत्यश्चीयति च, (कामिन्याः) नासिका इषुधीयति, तथा सुन्दरतरं तत्कर्णपालीयुगं सोल्लासपाशीयति ॥

पुरन्ति पुर अग्रगमने धातोः पुर कुषन् प्रत्यये-अनुबन्धलोपे च कृते पुरुषास्तेषु पुरुषेषु। भूयान् कामोऽस्त्यस्या इति कामिनी-"अत इनिठनौ" इति सूत्रेण इनिप्रत्यये ङीपि च कृते कामिनी, तस्याः कामिन्याः। भ्रूरेव वल्ली भ्रूवल्ली-भ्रूवल्ली आत्मानं कोदण्डमिव आचरति इति विग्रहे "उपमानादाचारे" इति सूत्रेण आचारेऽर्थे क्यचि कृते "क्यचि चे" ति सूत्रेणाकारस्य इत्वे च कृते कोदण्डीयतीति रूपस्य सिद्धिः। नीयतेऽनेनेति नयनम् ल्युट् प्रत्ययः। मार्गणमिव आचरतीति विग्रहे आचारेऽर्थे क्यचि इत्वे च कृते मार्गणीयति। चटुश्चासौ वेणिश्च इति विग्रहे राजदन्तादित्वात् वेणिशब्दस्य पूर्वनिपातः, अथवा पृषोदरादित्वात्पूर्वनिपातः, अथवा चटुला विद्युद् वेणिरेव चटुला वेणि चटुला-लसन्ती चासौ लोला चेति लसल्लोलं यथा स्यात्तथा। कृपाणमिव आचरतीति विग्रहे क्यचि प्रत्यये कृपाणीयति। हारस्यावली हारावली-ह्रियते मनोऽनेनेति हारः। प्रत्यश्चामिव आचरतीति विग्रहे क्यचि प्रत्यश्चीयति। नासिका इषवो धीयन्तेऽत्रेति विग्रहे "कर्मण्यधिकरणे चे" ति सूत्रेण धाधातोः किप्रत्यये इषुधि-पदस्य सिद्धिर्भवति, इषुधिमिवाचारतीति विग्रहे क्यचि कृते इषुधीयति इति पदस्य सिद्धिः। अतिशयेन सुन्दरमिति सुन्दरतरम्। तस्याः कर्णपाल्योर्युगं तत्कर्णपालीयुगम्। पाश्यते पाशः घञ्। उल्लसनमुल्लासः घञ्, उल्लासेन सह (वर्तते) इति सोल्लासः, सोल्लासश्चासौ पाशश्च सोल्लासपाशः, सोल्लासपाशमिव आचरतीति विग्रहे क्यचि सोल्लासपाशीयतीति रूपस्य सिद्धिर्भवति॥ उपमारूपके॥

तीति प्रियः " इगुपधज्ञाप्रीकिरः क " इति सूत्रेण कप्रत्ययः। मुचेः क्त्वा मुक्त्वा। विविधानि च तानि करणानि च विविधकरणानि, तैः विविधिकरणैः। प्रीणाति या सा प्रिया तां प्रियाम् " इगुपधे "ति के स्त्रीत्वे टापि प्रिया। समुपसर्गात् रञ्ज् धातोः णिजन्तात् लङि प्रथमपुरुषैकवचने समरञ्जयत्॥

Correct सलग्ना into संलग्ना.

श्लो. ७०. इयं वामाक्षी (यस्य) रथः, चपलनयने (यस्य) तुरगौ, वेणी (यस्य) कशा, सरलतरला हारलतिका (यस्य) रश्मिः, नितम्बो (यस्य) यच्चक्रं, (यस्य) कुचयुगवरूथः तमारूढो असौ कुसुमविशिखः सारथिः मे (मम) चेतो हरति ॥

वामे अक्षिणी यस्याः सा वामाक्षी। नीयेते आभ्यामिति नयने-चपले च ते नयने च चपलनयने। हारमध्यगो मणिः। तरलः, सरलः (निर्मलः) तरलः विद्यते अस्यामिति सरलतरला-अथवा-सरतीति सरलः सृ गतौ धातोरलच्प्रत्ययः, सरलश्च तरलं च सरलतरले ते विद्येते अस्यामिति सरलतरला। ह्रियते मनोऽनेनेति हारः। लतति (वेष्टयतीति) लता, लतैव लतिका, स्वार्थे कः हार एवलतिका। हारलतिका। यस्य चक्रं यच्चक्रम्। कुचयोर्युगं कुचयुगम्, कुचयुगमेव वरूथः (रथगुप्तिः), आवरणम्, व्रियते रथोऽनेनेति विग्रहे " जॄवॄञ्भ्यामूथन् " इति उणादिसूत्रेण ऊथन्प्रत्यये वरूथपदस्य सिद्धिः। वरूथं चर्म वेश्मनोरिति कोशः। रम्यतेऽत्रे-ति रथः, रम्धातोः " हनिकुषिणीञ्रमिकाशिभ्य " इति सूत्रेण क्थन्प्रत्यये रथपदस्य सिद्धिः। तुरेण त्वरया गच्छत इति विग्रहे " अन्येभ्योऽपि " इति सूत्रेण डप्रत्यये टिलोपे तुरगौ। आङुपसर्गात् रुहेः ढत्वादिकार्ये कृते आरूढ इति रूपम्। कुसुमान्येव विशिखाः यस्य सः कुसुमविशिखः। सरत्यश्वान् इति विग्रहे-सृगतौ धातोः " सर्तेर्णिच्चे "ति सूत्रेण थिन् प्रत्यये सारथिः। (सरति-इत्यस्य सारयतीत्यर्थे अन्तर्भावितण्यर्थः) (अथवा सरथस्यापत्यं सारथिः) ॥ रूपकम् ॥

Here the young lady is compared to a chariot.

Separate वेणी and रश्मिः

Her braid of hair is the wheap, while her necklace is the reins.

वरूथ (N.) Protection, shield etc.

वरूथ also (M.) a sort of wooden ledge or guard fastened round a chariot as a defence against collision.

श्लो. ७१. (हे)सुसखि, विलासावासान्तः कितवचरितेन प्रणयिना सायकमये शयने सुखेनासीनायाः मेऽतिकठिनौ कुचौ–कथमपि कराक्रान्तौ कृत्वा हठेन आश्लिष्टायाः (मे) मम नीविः परिशिथिलताम् अभजत् ॥

शोभना चासौ सखी च सुसखी तत्सम्बुद्धौ सुसखि। कितव (कितवयुक्तं) चरितं यस्य सः, तेन कितवचरितेन, चर भावे क्तः चरितम्। प्रणयनं प्रणयः "एरच्" इत्यच्, प्रणयोऽस्त्यस्येति विग्रहे "अत इनिठनौ" इति इनिः प्रणयी, तेन प्रणयिना। आवसन्ति अत्र इति विग्रहे आङुपसर्गात् वस्धातोः अधिकरणे घञ् वृद्धिश्च आवासः, विलसनं विलासः भावे घञ्, विलासस्य आवासः विलासावासः, विलासावासस्यान्तः (मध्ये) विलासावासान्तः। सायकस्य प्राचुर्यं सायकमयं, तस्मिन् सायकमये। शय्यतेऽत्र इति शयनं, तस्मिन् शयने। आस्ते इति आसीना आस् धातोः शानच्, अनुबन्धलोपे "ईदासः" सूत्रेण आकारस्येत्वे स्त्रीत्वविवक्षायां टापि–आसीना, तस्याः आसीनायाः। अति (अत्यन्तम्) कठिनौ अतिकठिनौ। कराभ्यामाक्रान्तौ। आश्लिष्यति स्मेति विग्रहे आङुपसर्गात् श्लिष् धातोः कर्मणि क्तप्रत्यये कृते स्त्रीत्वविवक्षायां टापि आश्लिष्टा, तस्याः आश्लिष्टायाः। परिशिथिलस्य भावः परिशिथिलता ताम्। भज् धातोर्लङि प्रथमपुरुषैकवचने अभजत् ॥

सायकमये -- the bed consisting of reeds of which the arrows are made. सायक=शर ।

शर—a sort of reed or grass used for arrows.

श्लो. ७२. हेमन्ते, कन्दर्पादेशजाग्रद्विविधसुरतवित्कान्तदन्तक्षतोष्ठव्यावल्गत्कान्तिराजत्सुललितललनासीत्कृतापीतवेगाः विरहितवनितावक्त्रसोष्माभिनिर्यन्निःश्वासावारिधाराधरणबहुलताम्–ऊष्मताम् उद्वहन्तः वाताः वान्ति॥

कन्दर्पस्यादेशः कन्दर्पादेशः तेन तस्मिन् वा। जाग्रतश्च ते विविधसुरतविदश्च कन्दर्पादेशजाग्रद्विविधसुरतविदश्च ते कान्ताश्च, तेषां दन्ताः, तैः क्षतावोष्ठौ, तत्र व्यावल्गन्त्यश्च ताः कान्तयश्च ताभिः, राजन्त्यश्च ताः सुललितललनाश्च तासां सीत्कृतानि, तैरापीतो वेगो येषां ते विरहिताश्च ताः वनिताश्च तासां वक्त्राणि, तैस्तेषां वा सोष्माणस्तेभ्यो अभिनिर्यन्त्यश्च ताः निश्वासावारिधाराश्च तासां धरणानि, तेषां बहुलता यस्यां सा ताम्। ऊष्मणो भाव ऊष्मता ताम्। उद्वहन्तीति उद्वहन्तः वाताः वान्ति। कम् (कुत्सायाम्), कुत्सितो दर्पोऽस्येति कन्दर्पः, यद्वा–कं सुखम्, तत्र तेन दृप्यतीति कन्दर्पः पचाद्यच्। आदेशनमादेशः, भावे, घञ्। जाग्रतीति जाग्रतः जागृधातो शतृप्रत्ययः, "जक्षित्यादयः षट्" इति अभ्यस्तसंज्ञा, 'नाभ्यस्ताच्छतु'रिति नुम्निषेधः। रमणानि रतानि भावे क्तः,

शोभनानि रतानि सुरतानि तानि विदन्तीति विविधसुरतविदः। सीत्कृत-मित्यत्र भावे क्तप्रत्ययः॥

श्लो. ७३. प्रौढा—पीनपयोधरोरुकलशा माञ्जिष्ठरागांशुका सौम्यावृत्त-नितम्बचक्रचतुरा पर्यङ्कभूमिस्थिता अन्तःसंभृतभासुरस्मरबृहद्भानुर्मनोहारिणी सुखरता हसन्ती प्रिया हेमन्ते नृणां हिमहारिणी (अस्ति)॥

धरत इति धरौ, पयसां धरौ पयोधरौ पचाद्यच्। पीनौ च तौ पयोधरौ च पीनपयोधरौ, तावेवोरुकलशौ, यस्याः सा पीनपयोधरोरुकलशा। मञ्जिष्ठाया अयम् माञ्जिष्ठः, माञ्जिष्ठो रागो यस्य तद् माञ्जिष्ठरागम्, माञ्जिष्ठरागमंशुकं यस्याः सा माञ्जिष्ठरागांशुका। सोम इवेति विग्रहे "शाखादिभ्यो य" इति य-प्रत्ययः, ततः–"प्रज्ञाद्यण्" सौम्य इति। नितम्ब एव चक्रं नितम्बचक्रम्, सौम्य-मावृत्तं नितम्बचक्रमिति सौम्यावृत्तनितम्बचक्रम्, तेन चतुरा या सा सौम्यावृत्त-नितम्बचक्रचतुरा। पर्यङ्कस्य भूमिः पर्यङ्कभूमिः, पर्यङ्कभूमौ स्थिता–इति पर्यङ्कभूमि-स्थिता। भातीति भानुः "दाभाभ्यां नुः" इति नुप्रत्ययः। बृहच्चासौ भानुश्चः बृहद्भानुः, स्मरयत्युत्कण्ठयतीति स्मरः, स्मर एव बृहद्भानुः स्मरबृहद्भानुः। भासते इति-भासुरः "भञ्जभासमिदो घुरच्" इति भास्धातोः घुरच् प्रत्ययः, भासुरश्चासौ स्मरबृहद्भानुश्च भासुरस्मरबृहद्भानुः। अन्तसंभृतः भासुरस्मरबृहद्भानुर्यस्याः सा अन्तःसंभृतभासुरस्मरबृहद्भानुः। मनो हर्तुं शीलं यस्याः सा मनोहारिणी। हरतीति हारिणी, हिमस्य-हारिणी हिमहारिणी (अथवा हिमं हर्तुं शीलमस्याः इति हिमहारिणी)। सुखं=सुखकरं रतं यस्याः सा सुखरता (रमणं रतम्)॥ परिसंख्या काव्यलिङ्गं च॥

माञ्जिष्ठरागांशुका—dressed in cloth dyed with madder. This type of dress is favourite to the women of Gujarat, Mewar and Marwar.

श्लो. ७४. शीतर्तुभीतः (अहम्) मनःस्थितेनैव तव सङ्गमेन (मनः) न सान्त्वयामि (अथवा न सान्त्वयामि इति तु न किन्तु सान्त्वयाम्येव), विधिः कदा शय्यासने आवयोरेव (आवयोरपि) सङ्गतगात्रयोगं विधाता (विधा-स्यतीति)॥

शीतश्चासौ ऋतुश्चः शीतर्तुस्तेन भीतः, भीत इत्यत्र "गत्यर्थे"ति कर्तरि क्तप्रत्ययं। मनसि स्थितः मनःस्थितस्तेन मनःस्थितेन, स्थाधातोः "गत्यर्थे"ति कर्तरि क्तः, "द्यतिस्यति०" इति सूत्रेण आकारस्येत्वे स्थित इति रूपम्। सङ्गमनं सङ्गमस्तेन सङ्गमेन. सङ्गम इत्यत्र समुपसर्गाद् गम्धातोः "ग्रहवृद्द०" सूत्रेण अप् प्रत्ययः सङ्गमः। कस्मिन् काले इति कदा, किम्शब्दात् दाप्रत्यये किमः कादेशे कदा।

विधत्ते इति विधिः, "उपसर्गे घोः कि" रिति सूत्रेण बाहुलकात्कर्तरि किप्रत्ययः आकारलोपश्च विधिः। शय्यतेऽत्र इति शय्या, शीङ्धातोः संज्ञायां "समज०" इति क्यप् "अयङ् क्यपि" सूत्रेण अयङ् टाप् शय्या, शय्या एव आसनं शय्यासनम्, तस्मिन् शय्यासने। सन्नते च ते गात्रे च सन्नतगात्रे, तयोर्योगः सन्नतगात्रयोगस्तम्। विधाता व्युपसर्गाद् धाधातोर्लुट्लकारस्य तृतीयपुरुषस्यैकवचनम्, विधास्यतीत्यर्थः॥ काकुः रूपकं च॥

श्लो. ७५. हेमन्तर्तौ निशिप्रमुदितवदना सुकृतिनी कापि (स्त्री) मदनमदभवद्बाष्पभावोत्तराभ्याम् ऊरुभ्याम् ऊरूगाढम् (आलिङ्ग्य) पीनोत्तुङ्गस्तनेन वक्षसा वक्षः (आलिङ्ग्य) निजभुजलतया सोत्कण्ठं (यथा स्यात्तथा) कण्ठदेशमालिङ्ग्य लीलया दोलामारुह्य स्वभर्तुः गृहान्तः शेते॥

हेमन्तश्चासौ ऋतुश्चः हेमन्ततुस्तस्मिन्। प्रमुदितं वदनं यस्याः सा प्रमुदितवदना। सुष्ठु कृतम् सुकृतं, सुकृतं रूपमस्या इति सुकृतिनी, इनि प्रत्ययःङीप् च। मदयतीति मदनः ल्युट्, मदनस्य मदः मदनमदस्तेन भवन्तौ बाष्प(घर्म)भावोत्तरौ (बाष्पोदयाधिक्ये) ययोस्तौ, मदनमदभवद्बाष्पभावोत्तरौ ताभ्याम्। पीनौ च तुङ्गौ च पीनोत्तुङ्गौ, पीनोत्तुङ्गौ स्तनौ यस्मिन् तत् पीनोत्तुङ्गस्तनम्, तेन। निजश्चासौ भुजश्चः निजभुजः, भुज्यतेऽनेनेति भुजः "भुजन्युब्जो" इति निपातनात् साधुः। निजभुज एव लता, लतति वेष्टयतीति लता तया निजभुजलतया। उत्कण्ठनमुत्कण्ठा "गुरोश्च हल" इत्यप्रत्ययः टापि उत्कण्ठया सह वर्तते इति सोत्कण्ठम्। कण्ठस्य देशः कण्ठदेशस्तम्। गृहस्य अन्तः 'गृहान्तस्तस्मिन्। स्वस्याः भर्ता स्वभर्ता तस्य स्वभर्तुः। यथासंख्यं रूपकं च॥

भवतबां—the reading of the Ms. is not good for metre. Similary स्तनेनमुद्रितवदनो-(metrically bad). The reading of the Ms. हेमन्तर्तो is obviously a clarical error.

श्लो. ७६ (हे) नाथ, मुग्धां किं वृथा प्रतारयसि (रे मां किं वृथा भाषसे), नैवास्मि (एषा स्त्री यथा तथाहम् नास्मीति भावः) इति मया विना (त्वम्) सखी भव, (भवता) मान्यो जनो मान्यताम्; (हे)कान्ते, मामैवं तस्य दुर्वचः (वच) वद, कया पिशुनया पाठिता (त्वम्); (हे) प्रियतमे, मामका इमे प्राणाः त्वयि सन्ततं वर्तन्ते॥

नाथति ईश्वरो भवतीति नाथः। अच्प्रत्ययस्तत्सम्बुद्धौ नाथ। मुह्यतीति मुग्धा, मुह्धातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति कर्तरि क्तः हकारस्य घकारः तकारस्य धकारः

टाप् मुग्धा, ताम् मुग्धाम् । प्रोपसर्गात् णिजन्तात् तॄधातोः लटि मध्यमपुरुषैक-वचने प्रतारयसीति रूपम् । मयेत्यत्र विनायोगे तृतीया भवति । मान् पूजायाम् धातोः कर्मणि लोटि प्रथमपुरुषैकवचने मान्यतामिति रूपम् (पूज्यतामित्यर्थः ।) वद्धातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने वदेति रूपम् । पठेर्णिजन्तात् कर्मणि क्तः इडागमो णिलोपश्च टापि पाठितेति रूपम् । मम इमे मामकाः । प्रीणातीति प्रिया अतिशयेन प्रिया प्रियतमा तत्सम्बुद्धौ । संततमित्यस्य "समो वा०" इति वार्तिक-विकल्पपक्षे सिद्धिर्भवति । दुष्टं वचः दुःखकरं वचः अथवा दुर्वचः दुर्निन्दितं वचः ॥

Correct the misprint संतत into संततं.

श्लो. ७७. बाष्पाम्बुपूर्णेक्षणां शय्यायां शयितां दयितां समीक्ष्य आगतसाध्वसः कान्तः कुत इदम् इति तदालीजनं पप्रच्छ—तत्र अन्यस्त्रीगमनात् इति कथिते तासां पुरः प्रतीत्यै प्रियतमावक्षोजलिङ्गद्वयं मुहुर्मुहुः संस्पर्श्येत ॥

बाष्पाणामम्बूनि (बाष्पाण्येव अम्बूनि) तैः पूर्णे ईक्षणे यस्याः सा ताम् । शय्यतेऽत्रेति विग्रहे शीङ् धातोः क्यपि "अयङ् क्यपि" सूत्रेण अयङादेशे टापि शय्या तस्यां शय्यायाम । शीङ् धातोः क्तप्रत्यये "निष्ठा शीङ्" सूत्रेण कित्वाभावे इटि गुणे अयादेशे टापि शयिता ताम् शयिताम् । समुपसर्गात् ईक्षधातोः क्त्वाल्यपि समीक्ष्या । आगतं साध्वसं यस्य स आगतसाध्वसः । कस्मात् इति कुतः, किम्शब्दात् तसिल् "कुति होः" सूत्रेण किमः कादेशः, कुतः । आली चासौ जनश्च आलीजनः, तस्या आलीजनः तदालीजनस्तम् । प्रच्छेर्लिट् पप्रच्छ । अन्याश्च ता स्त्रियश्च अन्यस्त्रियस्तासां गमनम् अन्यस्त्रीगमनं तस्मात् । प्रत्यु-पसर्गात् इण् धातोः क्तिन्प्रत्यये दीर्घे प्रतीतिस्तस्यै प्रतीत्यै । वक्षसि जातौ वक्षोजौ सप्तम्यां "जनेर्डः" प्रियतमायाः वक्षोजौ तयोर्लिङ्गम् (चिह्नम्) तस्य द्व-यम् प्रियतमावक्षोजलिङ्गद्वयम् । समुपसर्गात् स्पृशधातोर्णिचि कर्मणि विध्या-द्यर्थे लिङि संस्पर्श्येत ॥

संस्पर्श्येत is not quite clear.

श्लो. ७८. अपि (अतीत्यर्थे) स्नेहमचिन्त्य (अविचार्य) करकलितं वसनमाक्षिप्य सविनयं वचनमनादृत्य हृन्नाथे प्रयाते (सति) ततः सखी प्रियतममालक्ष्य (आलक्ष्य—लक्षीकृत्य) प्रियतममुद्दिश्य अथानया पटान्तेन स्वमुख-मावृत्य तत्रोच्चैः स्वरं रुदितम् अहो—इत्याश्चर्ये अथवा अहो आश्चर्यजनकम् रुदितम् ॥

स्नेहनं स्नेहः घञ् । चिति स्मृत्याम् चिन्तेः क्त्वाल्यपि चिन्त्यम्, न चिन्त्यम् अचिन्त्य, अत्र पूर्वं समासः पश्चात्, क्त्वाल्यप् अथवा समासात्पूर्वमपि—तद्बुद्धा-

वारोप्य क्त्वाल्यप् भवितुमर्हति। करेण कलितं करकलितम् (करमंबद्धम्)। आक्षिप्य दूरीकृत्य कलेः कर्मणि क्त इडागमश्च। आङुपसर्गात् क्षिप्धातोः क्त्वाल्यपि आक्षिप्येति रूपम्। आङुपसर्गात् दृधातोः क्त्वाल्यपि "ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्" सूत्रेण तुकि आदृत्येति रूपम्। न आदृत्य अनादृत्य। विनयेन सह (वर्तते) इति सविनयम्। उच्यतेऽनेनेति वचनम्, वचेर्भावे ल्युट्, सविनयं वचनमनादृत्य। हृदयस्य नाथः हृन्नाथस्तस्मिन्। प्रोपसर्गाद् यातेः क्तप्रत्यय कर्तरि प्रयाति स्म प्रयातस्तस्मिन् प्रयाते। अतिशयेन प्रियः प्रियतमस्तम्। आङुपसर्गाद् लक्षधातोः क्त्वाल्यपि। पटस्य अन्तम् (अन्तः) पटान्तस्तेन पटान्तेन। आङुपसर्गात् वृधातोः क्त्वाल्यपि तुकि आवृत्य। रुद् धातोः क्तप्रत्ययो भावे इडागमे रुदितम्॥

सख्यालक्ष–the reading of the Ms is meaningless. **प्रियतममलक्ष्य** –not seeing her lover who went away because she did not listen to her entreties.

–पटान्तेनावृत्य स्वमुखे–Covering her face with the hem of her garment. This probably means that she drew down the saree from her head to cover the face. If this is so it indicates the familiarity of the poet with women covering their heads with sarees This is a habit common among the women of Mewar, Marwar and Gujarat.

श्लो. ७९. (हे) सुन्दरि, इन्दुः अधुना मन्दरश्मिः जातः, निशा विभाता, अथवा निशि विभातः इन्दुः अधुना मन्दरश्मिर्जातः, (हे) कान्ते, विकटः (विशालः) पटुः कुक्कुटः कान्तानां कटु रारटीति, हीनस्नेहरसेन (हेतुना) रुक्षदशया दीपोऽपि मन्दायते, (हे) मानिनि मानं मुञ्च, इमं वल्लभं कामोत्सवैः रञ्जय॥

सुन्दरशब्दात् गौरादित्वात् स्त्रीत्वविवक्षायां ङीप् तत्सम्बुद्धौ सुन्दरि। इन्दतीति इन्दुः। अस्मिन् काले इति अधुना इदम्शब्दात् अधुनाप्रत्ययो भवति, इदम इशादेशे अधुनेति रूपम। मन्दाः रश्मयो यस्य स मन्दरश्मिः। जात इति क्तान्त-प्रयोगः। कर्तरि व्युपसर्गात् भाधातोः क्तप्रत्ययः स्त्रीत्वात् टापि विभाता। विशब्दात् "संप्रोदश्च कटच्" इति कटच् विकटः विशालः। पाटयतीति पटुः पट् गतौ णिजन्तात् "कलिपाटी" ति सूत्रेण उप्रत्ययः पटादेशश्च पटुः दक्षः। कोः पृथिव्याः कुटः कुक्कुटः पृषोदरादित्वात् सिद्धिर्भवति। कान्तानां कृते कटु, कटतीति कटु। पुनः पुनः अतिशयेन रटतीति रारट्यते, रारट्यते इति रारटीति। स्नेहनं स्नेहः स्नेहस्य रसः स्नेहरसः, हीनश्चासौ स्नेहरसश्च हीनस्नेहरसस्तेन। रुक्षा चासौ दशा च रुक्षदशा तया। मन्द इवाचरतीति विग्रहे "कर्तुः क्यङ्" सूत्रेण

क्यङि दीर्घे मन्दायते। दीप्यतेऽनेन यद्वा दीपयतीति घञ् कप्रत्ययः। मानोऽस्त्यस्याः इति मानिनी, इनिप्रत्ययः ङीप् च तत्सम्बुद्धौ मानिनि। कामस्योत्सवाः कामोत्सवास्तैः। दृश्यते इति दशा भिदाद्यङ् टापि दशा। मुञ्चति मुचधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपम्। रञ्जय-णिजन्तात् रञ्जधातोर्लोटि रूपम्॥

विभातो of the Ms. is obviously a clarical error.

कुर्क्कटः of the Ms. is a clarical error. It should be कुक्कुटः। but more current word is कुक्कुटः।

स्नेह going with दीप means oil, and दशा means wick.

श्लो. ८०. (हे) इन्दीवराक्षि, मन्दोऽपि मदनः अमृदुना बाणेन त्वत्कृते मां दुनोति, (हे) प्रिये दिनेऽस्मिन् नववल्लभे दयां कुरु, संगमरङ्गभङ्गिचतुरैरानन्दितालिजनैरङ्गैः तल्पोत्सङ्गविकल्पजल्पनपरं (यथा स्यात्तथा) मानेन चालिङ्गय॥

इन्दीवरे इव अक्षिणी यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ इन्दीवराक्षि। मन्दते इति मन्दः अच्। मदयतीति मदनः ल्युट्। न मृदुरमृदुस्तेन। तव कृते इति त्वत्कृते। दीयते स्म (दीङ् क्षये) "गत्यर्थाकर्मके" ति कर्तरि क्तः तकारस्य नकारः ओदित्वात् दीनस्तस्मिन् दीने। नवश्चासौ वल्लभश्च नववल्लभस्तस्मिन्। संगमनं सङ्गमः "ग्रहवृदृ" इत्यप्, सङ्गमस्य रङ्गः सङ्गमरङ्गस्तस्य भङ्गि भङ्गस्य करणम् तत्करोति तदाचष्टे वा इति णिजन्तात् "अच इः" सूत्रेण इः भङ्गिः विच्छित्तिः, तत्र चतुराणि तैः संगमरङ्गभङ्गिचतुरैः। आनन्दिताः आलीजनाः यैस्तानि आनन्दितालीजनानि तैरानन्दितालीजनैः। अङ्गः अगि गतौ पचाद्यच्। तल्पते अस्मिन् तल प्रतिष्ठायाम् उणादित्वात् "खष्पशिल्प' सूत्रेण तल्पेत्यस्य सिद्धिः। उत्सञ्जनमुत्सङ्गः घञ्, तल्पस्योत्सङ्गः तल्पोत्सङ्गः तत्र विकल्पं च तद् जल्पनं च तत्परं (प्रधानं) यथा स्यात्तथा। मानेन च। आलिङ्गय आङुपसर्गात् णिजन्तात् लिगि सङ्गे लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपम्॥ उपमा॥

दुनोति मृदुना of the Ms. gives no sense, hence दुनोति मदनो.

श्लो. ८१. (हे) स्मर, कृताञ्जलिरेषा (अहम्) त्वां नता; (हे) मनोरमकाम (मां) मा विमानय; दयिते आगते तु सरसाहम् भवदाज्ञां शिरसा धारयामि॥

कृतोऽञ्जलिर्यया सा कृताञ्जलिः, अज्यतेऽनेन अञ्जू धातोः अलिप्रत्ययः अञ्जलिः। काम्यतेऽनेनेति विग्रहे "पुंसि संज्ञायां घः" घ-प्रत्ययः कामः। मनो रमयतीति मनोरमः, मनोरमश्चासौ कामश्च मनोरमकामस्तत्सम्बुद्धौ मनोरमकाम। व्युपसर्गात् चुरादि णिजन्तात् मानधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने विमानयेति रूपम्।

आगच्छति स्मेति विग्रहे "गत्यर्थाकर्मके" ति क्तप्रत्यये आगतः। रसेन सह (वर्तते) इति सरसा भवतः आज्ञा भवदाज्ञा ताम् ॥

श्लो. ८२. (हे) सखि, मे (मम) दुकूले प्रतिकूले, हा (इति खेदे) मे (मह्यम्) हारो न रोचते, मे (मम) मेखला खला जाता, हंसकं हिंसकम् (हंसको हिंसक इति शुद्धः पाठः) ॥

दुष्टं कूलति कूल आवरणे "इगुपधे" ति कप्रत्ययः दुकूलमित्यस्य पृषोदरादित्वात् सिद्धिः, द्विवचने दुकूले। ह्रियते मनोऽनेनेति हारः घञ्। मेखं गतिं लातीति विग्रहे "आतोऽनुपसर्गे क" इति कप्रत्ययः। पृषोदरादित्वात् मेखलेत्यस्य सिद्धिर्भवति स्त्रीत्वे टाप्। खलतीति खला–खल संचये पचाद्यच् स्त्रीत्वविवक्षायां टाप्। हंस इव कायति "अन्येभ्योऽपि वा" इति उप्रत्ययः टिलोपः, अथवा हंस इवेति विग्रहे "इवेति प्रतिकृतौ" सूत्रेण कन् हंसकः। हिनस्तीति हिंसकः, हिंसक इति "निन्दहिंस" सूत्रेण वुञ्, तस्याकादेशे हिंसक इति रूपस्य सिद्धिर्भवति ॥

'हिंसकः पादकटकः' इत्यमरः।

राहो of the Ms. is a clarical error, so हंसकं.

प्रतिकूले would be a better reading instead of प्रतिकूलं। हंसकः or हंसकं an ornament for the feet or the ankles said to be formed like goose's foot. Compare शिशुपालवध VII. 23,

मदनरसमहौघपूर्णनाभीह्रदपरिवाहितरोमराजयस्ताः।
सरित इव सविभ्रमप्रयातप्रणदितहंसलभूषणा विरेजुः ॥

श्लो. ८३. कान्ते, कान्ते समागते (कान्ते मनोहरे कान्ते समागते) सख्या मुक्तालता कण्ठे (मम कण्ठे) मुक्ता, अञ्जनेन अञ्जिते नेत्रे (मम नेत्रे) नेत्रधृतिः कृता ॥

मुक्ता एव लता मुक्तालता। समाङुपसर्गात् गम्धातोः "गत्यर्थाकर्मके" ति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्यये समागत इत्यत्र मलोपः, तस्मिन् समागते। कण्शब्दे कणतीति कण्ठः "कणेष्ठ" इति ठप्रत्ययः तस्मिन्। मुच्यते स्मेति, विग्रहे निष्ठा क्तप्रत्यये स्त्रीत्वे टापि कुत्वे मुक्ता। अज्यतेऽनेनेति विग्रहे अञ्जू धातोः ल्युट् अनादेशे अञ्जनम्, तेन अञ्जनेन। अञ्जधातोः क्तप्रत्यये इडागमे द्विवचने अञ्जिते। नीयेते आभ्यामिति नेत्रे। "दाम्नी" सूत्रेण पक्षे ष्ट्रन् नेत्रे, नेत्राभ्यां ध्रियते–इति नेत्रधृतिः स्त्रियां क्तिन् अथवा नीयतेऽनेनेति नेत्रम् तस्मिन् नेत्रे–नेत्राभ्यां धृतिर्यस्याः सा नेत्रधृतिः। कृधातोः क्रियते स्मेति विग्रहे कर्मणि क्तः टापि कृता ॥ रूपकम् ॥

In harmony with **कण्ठे कान्ते कान्ते** in the next line **नेत्रे नेत्रे धृतिः कृता** would be more appropriate reading.

धृति—joy or content, was put on the eye i. e. her eyes expressed happiness.

श्लो. ८४. अनया कुचकलशरुचा इयं मुक्तालता सुदेशे कण्ठदेशे मुक्ता, (अनया) चारुबिम्बे नितम्बे वासोचितं स्वं वासः परिहितं, नक्तं भुक्तं, विपुलनयनयोरञ्जनैः अञ्जनं वै विमुक्तं, धर्ता विहर्ता भर्ता सुरतविलसितैः अञ्जितो रञ्जितश्च ॥

कुचावेव कलशौ कुचकलशौ तयो रुक्, रोचते इति रुक् क्विप्, तया कुचकलशरुचा । मुक्तैव लता मुक्तालता । शोभनो देशो, दिशतीति देशः पचाद्यच्, यस्य स सुदेशस्तस्मिन् । चारुः बिम्बो यस्य स चारुबिम्बस्तस्मिन् चारुबिम्बे । वसन्त्यत्रेति वासः वसेर्घञ् अधिकरणे, वासस्य उचितं वासोचितम् । विपुले च ते नयने च विपुलनयने तयोः विपुलनयनयोः. नीयते आभ्यामिति विग्रहे ल्युट् नयने । व्युपसर्गात् मुच धातोः क्तप्रत्ययः कुत्वं च विमुक्तम् । भुजेः क्तप्रत्यये कुत्वे भुक्तम् । नक्तं रात्रौ । धरतीति धर्ता, विहरतीति विहर्ता तृच्, बिभर्तीति भर्ता । रमणानि रतानि नपुंसके भावे क्तः, शोभनानि. रतानि सुरतानि, सुरतानां विलसितानि सुरतविलसितानि तैः । अञ्जेः क्तप्रत्ययः इडागमश्च अञ्जितः । रञ्जेः क्तप्रत्यय इडागमश्च रञ्जितः । अथवा अरंजितः अत्यन्तं जितः । ॥ रूपकम् ॥

Correct the missprint **नयनयोञ्जनं.-रञ्जनम्, अरंजितश्च** thoroughly conquered.

श्लो. ८५. विलोचनजलप्लुतवक्त्रचन्द्रा असौ कान्ता प्रणयप्रकोपात् रशनया दृढं बद्ध्वा विहितागसं मां निवासभवनं नीत्वा कर्णोत्पलेन सविलासं जघान ॥

विलोच्यते आभ्यामिति विलोचने लोचृ दर्शने ल्युट्, विलोचनयोर्जलानि विलोचनजलानि तैः प्लुतं व्याप्तम् । वक्त्रमेव चन्द्रो यस्याः सा, उच्यतेऽनेनेति वक्त्रम्, वचेः त्रप्रत्ययः कुत्वं च । चन्दतीति चन्द्रः, चदि आह्लादने रक्प्रत्ययः चन्द्रः । प्रणयनं प्रणयः "एरच्" इत्यच् । प्रकोपनं प्रकोपः भावे घञ् । प्रणयस्य प्रकोपः प्रणयप्रकोपस्तस्मात् । रशतीति रशना, रशशब्दे बहुलमन्यत्रापीत्यनेन युच् अनादेशो रशना टापि । "दृढः स्थूलबलयो"रिति निपातनात् दृढमिति सिद्ध्यति. तत् क्रियाविशेषणम् । बन्धधातोः क्त्वाप्रत्यये बद्ध्वेति रूपम् । विहितम् आगो येन स विहितागास्तम् । निवसन्त्यत्रेति निवासः अधिकरणे घञ्, निवासस्य भवनम् । कर्णयोरुत्पलं कर्णोत्पलं तेन कर्णोत्पलेन । विलासेन सह सविलासं (यथा स्यात्तथा) । जघान हनधातोः परोक्षे लिट् प्रथमपुरुषैकवचनम् ॥ रूपकम् ॥

Compare अमरुशतक Slo. 9.

चक्रचन्द्रा—gives some sense but it is not satisfactory. The reading should be amended into वक्त्रचन्द्रा because as said in the preface च and व, क्र and क्त्र are orthographically very near to one another.

श्लो. ८६. मया बलादपि आलिङ्गितानि नवपल्लवकोमलानि अतिमनोहराणि अनङ्गललितानि अनिभृतानि मदालसानि अङ्गानि बाला किमात्मनैव संकोचयति ॥

बलति बलते वा बल्यते वा "पचाद्यच्" अथवा "पुंसि संज्ञायां घः" बलं तस्मात् बलात् । आलिङ्गनानि आलिङ्गितानि । नवानि च तानि पल्लवानि च नवपल्लवानि, तद्वत्कोमलानि नवपल्लवकोमलानि । अति (अत्यन्तम्) मनो हरन्तीति अतिमनोहराणि "हरतेरनुद्यमनेऽच्" इत्यच्प्रत्ययः । अनङ्गवत् वा ललितानि अनङ्गललितानि । न निभृतानि (विनीतानि) अनिभृतानि (कान्तप्रयोगः)। मदेन अलसानि मदालसानि । अतति तान् तान् पर्यायान् गच्छति आत्मा तेन आत्मना आङुपसर्गात् अत्धातोः मनिन् आत्मा । समुपसर्गात् णिजन्तात्कुचेः वर्तमानकाले संकोचयति प्रयोगः ॥ उपमा ॥

श्लो. ८७. तरसा रसालान् द्रुमान् किञ्चिन्मुकुरयन् हेमन्तकान्तमदनं जनेषु मदयन् (अथवा हेमन्तम् अन्तमदन) जनेषु मदयन् जनयन् (उत्पादयन्) लीलायितेन (हेतुना) मलयाचलमल्लमालात् इतः किल शैशिरोऽयं मारुत आवाति ॥

तरत्यनेनेति विग्रहे तृधातोः असुन प्रत्यये गुणे तरस् तेन तरसा । रसेनालन्तीति रसालास्तान् रसालान्–(अल भूषणादौ)। द्रुवः शाखा एषां सन्तीति द्रुमास्तान् द्रुमान "द्युद्रुभ्याम" इति मत्प्रत्ययः। मुकुरं करोतीति विग्रहे प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे णिच मुकुरयति, मुकुरयतीति मुकुरयन् शतृप्रत्ययः। मदयतीति मदन. ल्युट्, अन्तश्चासौ मदनश्च अन्तमदनः, हेमन्तकस्य अन्तमदनः हेमन्तकान्तमदनः (अथवा हेमन्तस्यायं हैमन्त इदमर्थेऽण् हैमन्तम्)। जायन्ते इति जनाः, जन्धातोरच, तेषु जनेषु । मदयतीति मदयन् शतृप्रत्ययः । लीला इव आचरतीति विग्रहे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे"ति सूत्रेण क्यङि लीलायते, तस्मान्नामधातोः भावे क्तप्रत्यय इडागमे अलोपे च कृते लीलायितं तेन हेतुना । न चलतीति अचलः पचाद्यच, मलयश्चासौ अचलश्चः मलयाचलः,मल्लते इति मल्लः पचाद्यच्, मलयाचल एव मल्लः मलयाचलमल्लः, माति मानहेतुर्भवतीति विग्रहे माधातो रण्प्रत्यये पृषोदरादित्वात् रस्य लत्वे मालं क्षेत्रम् । मलयाचलमल्लस्य मालं मलयाचलमल्लमालं, तस्मात् मलयाचलमल्लमालात् (अथवा मल्लं च तत् मालं च मल्लमालं, मलयाचलस्य मल्लमालं तस्मात् । अस्मादिति इत अथवा सप्तम्यर्थे तसिल्, अस्मिन् इति इतः । शिशिरस्यायं शैशिरः इदमर्थेऽण् आदिवृद्धिश्च । म्रियन्तेऽनेनेति मरुत्, मरुदेव मारुतः "प्रज्ञादिभ्यश्चे"ति स्वार्थेऽण् वृद्धिः। आङुपसर्गात् वा गतिगन्धनयोः लटि आवाति ॥ उपमा ॥

हेमन्तमंतमदनं— The reading of the Ms. is हेमन्तमंतमदनं. As it stands, it is difficult to interpret it according to grammar either we change it to हैमन्तमंतमदनं or हेमन्तक + अन्तमदनम्. Even then it is difficult to understand the propriety of the word अन्त. It is possible that the reading might have been हैमन्तकान्तमदनं meaning the charming cupid of Hemanta.

मल्ल–The original reading might be मल्लि meaning Jasmine. If we take मल्ल as a des'ya word, one of its meaning is saffron coloured. See Des'inamamālā (VI. 145. Bombay; S. Series)

In both the cases however it is difficult to understand their propriety in relation to मलयाचल. It may be that मल्ल here might be for माल which means either name of a district lying west and southwest of Bengal or merely tableland of मलयाचल.

श्लो. ८८. (हे) सखि, एतस्मिन् शिशिरे विधौ विमुखिते यासां प्रियः प्रोषितः, पत्युः सङ्गमसंभवं सुखमहो यासां च नो जायते, धृतभूरिमानविभवाः याः मानिन्यस्तोषं न लेभिरे तासां सीमन्तिनीनां मनः मनोभवः किं न दहेत् ॥

विधीयतेऽनेन अथवा विधत्ते इति विधिस्तस्मिन् विधौ, व्युपसर्गात् धाधातोः " उपसर्गे घोः कि"रिति सूत्रेण किप्रत्ययः आकारलोपश्च विधिः । विरुद्धमननुकूलं मुखं विमुखं तस्मात् (विमुखशब्दात्) "तारकादिभ्यः इतच्" । विरुद्धमननुकूलं मुखं संजातमस्येति विमुखितस्तस्मिन् । प्रोष्यते स्मेति प्रोषितः प्रोपसर्गात् वसधातोः कर्मणि क्तप्रत्ययः अथवा प्रवसति स्मेति विग्रहे कर्तरि क्त प्रत्ययः " गत्यर्थे"ति सूत्रेण । संगमनं संगमः "ग्रहवृद" इत्यप्, संगात्संभवो यस्य तत् सङ्गमसंभवम् । भूरिमाना एव विभवाः भूरिमानविभवाः, धृताः भूरिमानविभवाः याभिः ता धृतभूरिमानविभवाः । मानाः सन्ति आसामिति मानिन्यः, "अत इनिठनौ" इति इनिः ङीप् च । सीमन्ताः सन्ति आसामिति सीमन्तिन्यः इनिः ङीप् च तासाम् । मनसो भव उत्पत्तिर्यस्य अथवा मनसि भवति इति मनोभवः पचाद्यच् ।

श्लो. ८९. (हे) प्रियतम, मुकुरिततरौ वसन्तसमागमे मनोगतामङ्कस्थां मां विहाय ते (तव) गन्तु न युक्तम्, अथ रात्रौ कोकिलया कृतान् कलकलरवान् श्रुत्वा सम्प्रति भवति चलिते (सति) एषा जीवितुं नोत्सहे ॥

मुकुराः (कोरकाः) संजाता अस्येति विग्रहे " तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इति सूत्रेण इतच्प्रत्ययः, मुकुरिताः तरवो येन स मुकुरिततरुस्तस्मिन् मुकुरिततरौ । वसन्त्यत्र मदनोत्सवा इति विग्रहे " तॄभूवहिवसि " सूत्रेण झच्प्रत्ययः । वसन्तः, समागमनं समागमः "ग्रहवृद" इत्यप्, वसन्तस्य समागमः

वसन्तसमागमस्तस्मिन् । मनसि गता मनोगता ताम् । अङ्के तिष्ठतीति अङ्कस्था क्विप् ताम् । गम्धातोः तुमुन्प्रत्ययः गन्तुम् । कलकलाश्च ते रवाश्च कलकलरवाः तान् । श्रुधातोः क्त्वाप्रत्ययः श्रुत्वा । कृधातोः कर्मणि क्तप्रत्ययः कृतान् । भातीति भवान् "भातेर्डवतुः" तस्मिन् । चलधातोः क्तप्रत्ययः इडागमः चलितस्तस्मिन् चलिते । जीवधातोः तुमुन्प्रत्यये इडागमे च कृते जीवितम् । उदुपसर्गात् सह्धातोर्लटि उत्तमपुरुषैकवचने उत्सहे ॥ काव्यलिङ्गम् ॥

कृतान्–The reading of the Ms. does not grammatically fit properly.

श्लो. ९०. वासावासविलासवासितमतिः दयितः दृढोष्मलकुचां प्रेमप्रसन्नां प्रियाम् आलिङ्गन् शीतं च नो विन्दते, चेतःसंपरिवर्तमानदयितासंदीप्यमानोल्लसत्संसर्पद्विरहाग्नितापितवपुः पान्थोऽपि नो जग्मिवान् ॥

वसन्त्यत्रेति वासः अधिकरणे घञ् । आवसनमावासः भावे घञ् । वासे आवासः (वासस्यावासः) वासावासः तस्य तस्मिन् वा विलासस्तेन वासिता मतिर्यस्य सः । वास्यते स्मेति वास उपसेवायाम् क्तप्रत्यय इडागमश्च वासित इति । दृढौ ऊष्मलौ कुचौ यस्याः सा ताम् (दृढौ च ऊष्मलौ च दृढोस्मलौ दृढोष्मलौ कुचौ यस्याः सा ताम्) । प्रेमणि प्रसन्ना प्रेमप्रसन्ना ताम् । आलिङ्गतीति आलिङ्गन् । नो इतिनिषेधार्थकोऽव्ययः । विद्धातुस्तुदादिः, वर्तमानकाले आत्मनेपदे प्रथमपुरुषैकवचनम् "शेमुचादीना"मिति नुम् । संपरिवर्तते इति संपरिवर्तमाना चेतसि संपरिवर्तमाना चेतःसंपरिवर्तमाना, सा चासौ दयिता च । संदीप्यते इति संदीप्यमानः शानच् । उल्लसतीति उल्लसन् शतृ । संसर्पतीति संसर्पन् । विरहस्याग्निः विरहाग्निः, चेतःसंपरिवर्तमानदयितया संदीप्यमानश्चासौ उल्लसन् चासौ संसर्पन् चासौ विरहाग्निश्च, चेतःसंपरिवर्तमानदयितासंदीप्यमानोल्लसत्संसर्पद्विरहाग्निस्तेन । तापित इति तपेर्णिजन्तात् क्तः । तापितं वपुर्यस्य सः । चेतःसंपरिवर्तमानदयितासंदीप्यमानोल्लसत्संसर्पद्विरहाग्नितापितवपुः । जग्मिवान् इति क्वसुप्रत्ययान्तः, गमेः क्वसुः इडागमे द्वित्व उपधालोपादिकार्ये कृते जग्मिवान् इति रूपम् ॥ काव्यलिङ्गम् ॥

वासावास–bed–chamber.

श्लो. ९१. (हे) सखि, प्राणेश्वरे समायाते मे प्राणाः पुनरागताः । इदं कौतुकं पश्य, मृताहं पुनः जीविता ॥

प्राणन्त्येभिरिति विग्रहे अन् प्राणने धातोः "हलश्चे"ति घञ् प्राणाः, ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः "स्थेशभासपिसकसो वरच्" इति वरच्, प्राणानामीश्वरः प्राणेश्वरस्तस्मिन् । समायाति स्मेति समायातः समाङुपसर्गात् यातेः "गत्यर्थाकर्मके"ति कर्तरि क्तः समायातस्तस्मिन् । आगच्छन्ति स्मेति आगताः "गत्यर्थे"ति कर्तरि क्तः । कुतूं कायतीति कैशब्दे "आतोऽनुपसर्गे क" इति कप्रत्यये (उपपदसमासे) ह्रस्वे च कृते "प्रज्ञाघण्"वृद्धिः कौतुकम् । मृता जीविता–पतौ कान्तौ।

श्लो. ९२. (हे) सखि, गृहात् दयिते निर्यातेऽपि प्राणैः (चित्तैः सह) पृष्ठतः गता पुनः प्राग्ग्रामे भवनमागतास्मि ततोऽस्य सेवां कुर्वे। स्वप्नेषु चेतोविमोहात्मकैः प्रणयातिरेकललितैः प्रतिरात्रिजातसुरतैः तत्रापि प्राणेश्वरो रञ्जितः (निर्यातेऽपीत्यत्रापिशब्द एवार्थकः)॥

गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् तस्मात् गृहात्। दय्यते स्मेति विग्रहे कर्मण्ये दयितस्तस्मिन्। निर्याति स्मेति निर्यातस्तस्मिन् निर्याते 'गत्यर्थाकर्मके'-ति कर्तरि क्तप्रत्ययः। प्राणैरित्यत्र सहार्थे तृतीया। पृष्ठशब्दात् तसिल् पृष्ठतः "आद्यादिभ्य उपसंख्यान"मिति नियमात् "पञ्चम्यास्तसिल्"। प्राक् चासौ ग्रामश्च प्राग्ग्रामस्तस्मिन्। भवन्त्यत्र इति भवनम् तस्मिन्। तस्मादिति तत् तद्-शब्दात् पञ्चम्यास्तसिल्। स्वप्नेषु-इति स्वपेर्नन् प्रत्ययः। चेतसो विमोहात्मकानि चेतोविमोहात्मकानि तैः। प्रणयनं प्रणयः, अतिरेचनानि अतिरेकाः अत्युप-सर्गात् रिच्धातोः भावे घञ् प्रणयस्यातिरेकास्तैर्ललितानि तैः प्रणयातिरेकललितैः। शोभनानि रतानि सुरतानि। जातानि च तानि सुरतानि च जातसुरतानि। रात्रिं-रात्रिं प्रति-इति प्रतिरात्रि, प्रतिरात्रि जातसुरतानि इति प्रतिरात्रिजातसुरतानि तैः। तस्मिन् इति तत्र सप्तम्यास्त्रल्। प्राणानामीश्वरः प्राणेश्वरः। रञ्जेः क्तः रञ्जितः। ॥ काव्यलिङ्गम् ॥

श्लो. ९३. इयं तन्वी तरलेक्षणा, मम मनः पञ्चेषुणा हन्यते, इयम् उन्नतौ वक्षोजौ प्रवहते, ममेदं मनः खिन्नम्, असौ मध्ये सुकृशा, ममादढमति (अथवा ममाढढम् इति हेतोः) मनोभङ्गं प्राप्नोति, इयमबला लावण्याम्बुपरिप्लुता, मदीयं मनः शून्यम् ॥

तनुशब्दात् "वोतो गुणवचना"दिति ङीपि यणि तन्वी। ईक्ष्यते आभ्याम् इति ईक्ष्धातोर्ल्युट् ईक्षणे, तरले ईक्षणे यस्याः सा तरलेक्षणा। पञ्च इषवो यस्य स पञ्चेषुस्तेन पञ्चेषुणा। ईष्यते एभिरिति विग्रहे-"ईषेः किच्च" सूत्रेण उप्रत्ययः "आदेरिच्च" इषवः। हन्यते इति हन् कर्मणि क्तप्रत्यये यकि आत्मनेपदे हन्यते इति रूपम्। उन्नमतः स्मेति उदुपसर्गात् नम्धातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति क्तः मलोपः उन्नतौ। वक्षसि जातौ वक्षोजौ "सप्तम्यां जनेर्डः"। खिदेः क्तः तकारदकारयोर्नकारः खिन्नम्। शोभना सुतरां कृशा सुकृशा "दढः स्थूलबलयोः" सूत्रेण आदढमिति निपातनम्। लवणात्ष्यिञ् सैव चतुर्वर्णादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् लावण्यम्, लावण्यान्येव अम्बूनि लावण्याम्बूनि, तैः परिप्लुता (व्याप्ता) लावण्याम्बुपरिप्लुता। शुने हितम् इति विग्रहे "शुनः संप्रसारणम् वा च दीर्घः" इति यत्। ममेदं मदीयं "वृद्धाच्छः" इयादेशः॥ असंगतिः रूपकं च ॥

पञ्चेषु-See the notes on S'lo. 2.

श्लो. ९४. अथ यत्रादौ अतुलः कलमेखलाकलकलः प्रादुर्बभूव ततः तत्रैव तदैव नूपुरणत्कारः शुश्रुवे, तत् (तस्मात्) प्रमदया पुरुषायितं, कामिना वामायितं मन्ये, पश्चाच्चित्ररतावसानसमये ताभ्यां स्वभावे स्थितम् ॥

आ प्रथमं दीयते गृह्यते इति आदिः आङुपसर्गात् दाधातोः किप्रत्ययः। कला चासौ मेखला च कलमेखला तस्याः कलकलः कलमेखलाकलकलः। नास्ति तुला (उपमा) यस्य स अतुलः। तस्मादिति ततः तसिल्। तदा 'तदो दा च "सूत्रेण दाप्रत्ययः। नूपुरस्य रणत्कारः नूपुररणत्कारः। श्रुधातोः कर्मणि लिटि शुश्रुवे। प्रकृष्टो मदो यस्याः सा प्रमदा-अथवा प्रमदो हर्षोऽस्त्यस्या इति विग्रहे "अर्शआदिभ्यः" अचः अोत्वात् टापि प्रमदा यया पुरुष इवाचरति इति विग्रहे क्यङ्दीर्घे पुरुषायते, तस्माद्भावे क्तः इडागमश्च पुरुषायितम्। वामा इवाचरतीति-विग्रहे "कर्तुः क्यङ्"सूत्रेण क्यङि दीर्घे वामायते तस्मान्नामधातोः "नपुंसके भावे क्तः" सूत्रेण क्तप्रत्यय इडागमश्च वामायितम्। रमणं रतम् तद् चित्रं च रतं च चित्ररतम्, तस्यावसानं तस्य समयः तस्मिन्। स्थितमित्यत्र नपुंसके भावे क्तः स्थितम्, "द्यतिस्यती" इत्वे स्थितम् ॥ उपमा उत्प्रेक्षा च ॥

श्लो. ९५. (हे) मुग्धे, त्वं हृदि आनन्दं धेहि, अथ पाणिद्वये कङ्कणं संधेहि, सद्वासः परिधेहि, उरसि हारं परिधेहि, पादयोर्नूपुरं (परिधेहि),सामोदानि कुसुमानि मूर्ध्नि निधेहि, अक्ष्णोश्च कालाञ्जनं (निधेहि), अथ निजप्रेयसि आयाते मङ्गलं साधु विधेहि ॥

आनन्द इति घञन्तः प्रयोगः (अथवा अर्श आदित्वात् अच्)। धाधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने धेहि रूपम्। पाण्योर्द्वयं पाणिद्वयं तस्मिन्। समुपसर्गात् धाधातोर्लोटि संधेहिरूपम्। कं शुभं कणतीति कङ्कणं, कण्शब्दे अच्। वस्यते (आच्छाद्यते) अनेनेति वासः, वस अच्छादने "वसेर्णित्" इति सूत्रेण असुन्प्रत्ययः वृद्धिश्च वासः। ह्रियते(मनो)ऽनेनेति हारः, हृधातोः घञ् वृद्धिश्च हारस्तं हारम्। नूपुरम् -नुवि पुरति पुरमग्रगमने कः कित्वाद्गुणाभावः। आमोदेन सहितानि सामोदानि। कालं च तदञ्जनं च, अज्यतेऽनेन इति अञ्जनम् करणे ल्युट्। निजश्चासौ प्रेयान् च अथवा निजस्य प्रेयान्, तस्मिन्। आयाति स्मेति आयातस्तस्मिन् आयाते, आङुपसर्गात् यातेः क्तः। मगि सर्पणे मङ्गति मङ्ग्यते वा, मङ्गेरलच् मङ्गलम् ॥

श्लो. ९६. (हे) बाले, (त्व) पूर्णमनोरथासि, (यतः) तवैव कान्तः परिपूर्णकामः समागतः,(हे बाले), आगच्छ, मङ्गलानि कुरु,तवाद्य गौरी प्रसन्ना एव ॥

पूर्यते स्मेति पूरी आप्यायने कर्तरि कर्मणि वा क्तः पूर्णः। मन एव रथोऽत्र मनोरथ इव वा मनोरथः, पूर्णः मनोरथो यस्याः सा पूर्णमनोरथा, कामनं कामः कमु कान्तौ घञ्, परिपूर्णः कामो यस्य सः परिपूर्णकामः। प्रसादत्

इति प्रसद्धातोः "गत्यर्थाकर्मके"ति कर्तरि क्तप्रत्ययः "रदाभ्यामि"ति सूत्रेण तकारदकारयोर्नकारे कृते स्त्रीत्वात् टापि, प्रसन्ना । अत्र अस्मिन् अहनि इति "सद्यः परुत्" सूत्रेण, अद्य इति शब्दः साधुः । गौरः वर्णः अस्त्यस्या इति गौरादित्वात् ङीष् गौरी ॥

गौरी प्रसन्ना–Here obviously is a reference to गौरीव्रत which young women observe to propitiate गौरी so that they may get good husbands or their married life may be happy.

श्लो. ९७. प्राणेश्वरे (त्वं) सानन्दा भव, सादरा भव, प्रीता भव, सकामा भव, साहारा भव, भूषिता भव. (प्राणेश्वरे त्वं) प्रेयसी भव, वाह्याच्च देशान्तराद्वासभवने आयातेन नानामोहनपण्डितेन कान्तेन सहिता कामोत्सवैः रमस्व (अथवा वासभवने कामोत्सवैः रमस्व) ॥

ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः "स्थेशभासपिसकसो वरच" सूत्रेण वरच । आनन्देन सह सानन्दा, तेन सहेति "तुल्ययोगे समासे वोपसर्जनस्ये"ति सहस्य सादेशे सानन्दा । आदरेण सह सादरा । प्रीयते स्मेति प्रीङ्प्रीणने क्तप्रत्ययः स्त्रीत्वविवक्षायां टाप् प्रीता । कामेन सह सकामा । आहारेण सह साहारा । भूष्यते स्मेतिभूषधातोः क्तः टाप् इडागमश्च भूषिता । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । अन्यो देशो देशान्तरं तस्मात् । आयाति स्मेति आयातः "गत्यर्थाकर्मके"ति क्तप्रत्ययः, आयातः तेन आयातेन, मुह्यतेऽनेनेति मुहेर्ल्युटि गुणे मोहनम् (सुरतम) । नाना च तद् मोहनं च नानामोहनं तस्मिन् पण्डितस्तेन ॥

श्लो. ९८. (हे) मानिनि, चिन्तां मुञ्च, धृतिं भजस्व, मोहे मनो मा कृथाः, द्वित्रैरेव हि वासरैः प्रियतमप्रत्यागमस्यावधिः इत्येवं यावत् प्रियसखी सादरं प्रतिबोधयेत् अङ्गणभुवि उपागतः कान्तः वाक्यामृतैः प्रियां प्रीणाति ॥

मानोऽस्त्यस्या इति मानिनी तत्सम्बुद्धौ मानिनि इनिप्रत्ययो ङीप् च । चिन्तनं चिन्ता चिति स्मृत्याम् "चितिपूजि" सूत्रेण अङ टाप् चिन्ता ताम् । धरणं धृतिः "स्त्रियां क्तिन्" ताम् । मोहनम् मोह मुह वैचित्ये घञ् तस्मिन् । कृ लुङि मध्यमपुरुषैकवचने आत्मनेपदे माङ्योगे अडागमाभावे सिचोलुकि कृथाः । प्रियतमस्य प्रत्यागमस्तस्यावधिः, अवधानम् अवधिः "उपसर्गे घोः कि"रिति किप्रत्ययः । अविद्यमानं मृतं मरणमत्रेत्यमृतम् । प्रिया चासौ सखी प्रियसखी । आदरेण सह सादरम् । द्वौ वा त्रयो वेति द्वित्रास्तैः "संख्ययाऽव्ययासन्न"इत्यादिना । "समासे बहुव्रीहौ संख्येये" इति डचि टिलोपे बहुवचने द्वित्रास्तैर्द्वित्रैः । वासयन्ति वसतेर्ण्यन्तात् "अतिकमिभ्रमिः" सूत्रेण रप्रत्यये वासरास्तैः वासरैः । अङ्गत्यत्र "करणाधिकरणयोश्चे"ति ल्युट् अङ्गनं, पृषोदरादित्वात् अङ्गणं, अङ्गणस्य भूः अङ्गणभूः तस्याम् । वाक्यान्येव अमृतानि तैः ॥ रूपकम् ॥

The reading of the Ms. **श्चित्रिरेव हि वासरे** is grammatically indefensable hence the amendation.

श्लो. ९९. योषितामतिसमुन्नतस्तनमयं सिंहासनमारूढः तद्वक्त्रेन्दुधृतातपत्ररुचिरस्तद्भ्रूलताकार्मुकः तद्वेणीविलसत्कृपाणफलकस्तल्लोलेक्षणमार्गणः शृङ्गारिणां पूजितः श्रीमतां श्रीनन्दनो विजयते॥

योषन्तीति योषितस्तासां योषिताम्, युष्धातोः "हृसृरुहियुषिभ्यः" सूत्रेण इतिप्रत्ययः योषितः । अतिसमुन्नतौ च स्तनौ च तयोः प्राचुर्यं यस्मिन् अतिसमुन्नतस्तनमयम् तत्प्रकृतिवचने मयट् । सिंहचिह्नितमासनं सिंहासनं मध्यमपदस्य लोपः। आङुपसर्गात् रुह्धातोः कर्तरि क्तः ढत्वादिकार्ये कृते आरूढ इति । वक्त्रमेव इन्दुः वक्त्रेन्दुः, तस्याः वक्त्रेन्दुः तद्वक्त्रेन्दुस्तेन धृतमातपत्रम्, आतपात् त्रायते इति आतपत्रं, तद्वक्त्रेन्दुधृतातपत्ररुचिरः । तस्याः भ्रूरेवलता तद्भ्रूलता, सैव कार्मुकं यस्य सः तद्भ्रूलताकार्मुकः, कर्मणे प्रभवति इति कार्मुकम् । विलसन् चासौ कृपाणफलकश्च विलसत्कृपाणफलकः । तस्या वेणी तद्वेणी, तद्वेण्येव विलसत्कृपाणफलको यस्य सः तद्वेणीविलसत्कृपाणफलकः । लोले च ते ईक्षणे च लोलेक्षणे, तस्याः लोलेक्षणे तल्लोलेक्षणे, तल्लोलेक्षणे एव मार्गणौ यस्य सः तल्लोलेक्षणमार्गणः । शृङ्गं प्राधान्यमियर्ति कर्मण्यण्, शृङ्गाराः, शृङ्गाराः सन्ति एषामिति शृङ्गारिणः "अत इनिठनौ" इति इनिः, तेषां शृङ्गारिणाम् । पूजा संजाता अस्येति पूजितः "तारकादिभ्य इतच्" अथवा पूजधातोः क्तप्रत्यये इडागमे च पूजितः । श्रियः सन्ति एषामिति श्रीमन्तस्तेषां श्रीमताम् । नन्दयतीति नन्दनः, श्रीयुक्तो नन्दनः श्रीनन्दनः (अथवा श्रिया नन्दयतीति श्रीनन्दनः)। विजयते इत्यत्र "विपराभ्यां जे"रित्यनेन आत्मनेपदं भवति ॥ रूपकम् ॥

This s'loka describes the supreme power of **श्रीनन्दन.** The word **श्रीनन्दन** would mean the son of **श्री** i. e. **लक्ष्मी** i. e. **प्रद्युम्न** incarnation of god of love.

श्रीनन्दन–It appears to me that there is a reference to some person bearing that name but it is difficult to trace the identity of this person.

श्लो. १००. सौजन्ये निरताः खलेषु विरताः विद्वद्गुणग्राहिणः लोके विश्रुतकीर्तयो गुणभृतो ये केऽपि शृङ्गारिणः तेषां करिकुम्भतुङ्गकठिनौ पीनावुरोजौ बिभ्राणा गुणवती वामविलोचना भुवि सदा भोगाय भूयात् ॥

सुष्ठु शोभनो जनः सुजनस्तस्य भावः कर्म वा सौजन्यं ष्यञ्, तस्मिन् सौजन्ये । निःशेषेण रताः निरताः व्युपसर्गात् रमेः क्तप्रत्ययः,। विरम्यन्ते स्मेति विरताः (निवृत्ता इत्यर्थः)। विदुषां गुणाः विद्वद्गुणास्तान् गृह्णन्तीति विद्वद्गुणग्राहिणः "नन्दिग्रही"ति णिनिः। विश्रुताः कीर्तयो येषां ते विश्रुतकीर्तयः। बिभ्र-

तीति भृतः, गुणानां भृतः गुणभृतः । तुङ्गौ च कठिनौ च तुङ्गकठिनौ, करिणः कुम्भौ करिकुम्भौ, करिकुम्भौ इव तुङ्गकठिनौ करिकुम्भतुङ्गकठिनौ । बिभृते इति बिभ्राणा "लटः शतृशानचौ" इति शानच् । गुणाः सन्ति अस्या इति गुणवती ङीप् । "तदस्यास्त्यस्मि"न्निति मतुप् "मादुपधायाश्च" सूत्रेण मस्य वः । वामे विलोचने यस्याः सा वामविलोचना । सर्वस्मिन् काले इति सदा "सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा" सूत्रेण सर्वशब्दात् दाप्रत्ययः, "सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां" सूत्रेण सर्वशब्दस्य सभावो भवति, सदा सर्वदा । भोजनं भोगः भुज्धातोर्घञ् "चजोः कु"रिति-कुत्वे भोगस्तस्मै भोगाय । भवतु-भूधातोर्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने भवतु । विलोच्यते आभ्यामिति विलोचने लोचृ दर्शने ल्युट् ॥ उपमा ॥

This is a benedictory s'loka.

In the first two lines, the qualities of a man of culture and a beau of ancient India are described.

श्लो. १०१. श्रीहर्षः उन्मीलन्मतियन्त्रसूक्ष्मविवरां प्राप्योच्चैर्विलसत्सुवर्णिगुणिनीं खेलन्मनोभूमणिं द्विजराजरोचिरमलाम् उत्कर्षितां शृङ्गारहारावलीं सुहृदां विभूषणकृते सद्वाक्यमुक्ताफलैः सानन्दम् अग्रथ्नात् ॥

श्रीयुक्तो हर्षः । उन्मीलन्ती चासौ मतिश्च उन्मीलन्मतिः, उन्मीलन्मतिरेव यन्त्रम् उन्मीलन्मतियन्त्रम्, तेन कृतं सूक्ष्मं विवरं यस्यां सा ताम् । प्राप्यते प्राप्या, प्रोपसर्गात् आप्लृधातोः "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्रेण ण्यत् टापि प्राप्या । सुष्ठु शोभनो वर्णोऽस्त्यस्यामिति विग्रहे "अत इनिठनौ" सूत्रेण इनिः ङीप् च सुवर्णिनी । गुणाः सन्त्यस्यामिति इन्_त्ययो ङीप् गुणिनी, सुवर्णिनी चासौ गुणिनी च सुवर्णि-गुणिनी प्राप्या उच्चर्विलसन्ती सुवर्णिगुणिनीति प्राप्योच्चैर्विलसत्सुवर्णिगुणिनी ताम् । मनसः मनसि वा भवतीति मनोभूः, भूधातोः क्विप् । खेलतीति खेलन् शतृप्रत्ययः, खेलन् चासौ मनोभूश्च खेलन्मनोभूः, खेलन्मनोभूरेव मणिः यस्यां सा खेलन्मनोभूमणिस्ताम् । द्विजराजस्य रोचिः (चन्द्रस्य रोचिः) द्विजराजरोचिस्तद्वदमला या सा द्विजराजरोचिरमला तां द्विजराजरोचिरमलाम् । नास्ति मला मलं वा अस्यामिति अमला । उत्कर्षणमुत्कर्षः भावे घञ्, उत्कर्षः संजातोऽस्यामिति विग्रहे "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" टापि उत्कर्षिता ताम् । शृङ्गं प्राधान्यमियर्तीति विग्रहे कर्मण्यण् शृङ्गारः, शृङ्गारस्य (शृङ्गाररसस्य) हारावली शृङ्गारहारावली ताम् । ह्रियन्ते मनांसि एभिरिति हाराः घञ्, करणे घञ् । शोभनानि हृदयानि येषां ते सुहृदस्तेषां सुहृदाम् । विभूषणाय इति विभूषणकृते । उच्यन्ते यानि तानि वाक्यानि, समीचीनानि वाक्यानि सद्वाक्यानि, सद्वाक्यान्येव मुक्ताफलानि तैः सद्वाक्यमुक्ताफलैः । मुक्ताफलमिव (अथवा मुक्तैव फलमिव) । आनन्देन सह इति सानन्दम् । अग्रथ्नात् ग्रन्थधातुस्तस्माल्लङि अग्रथ्नात् ॥ रूपकम् उपमा च ॥

It is difficult to settle satisfactorily the text of this last and historically important verse. I had to make rather very bold

changes in the readings of the Ms. I, therefore, give below the text according to the Ms. for comparison and consideration of scholars.

उन्मीलन्मतियन्त्रसूक्ष्मविवरा सानन्दमुत्कर्षितः
प्राप्योच्चैर्विलसत्सुवर्णगुणिनी खेलन्मनोभूमणिम् ।
श्रीहर्षं सुहृदं विभूषणकृते सद्वाक्यमुक्ताफलैः
यद्ग्रन्थद्विजराजरोचिरमलां शृङ्गारहारावलीम् ॥

This s'loka gives the name of the work as well as that of the author. Here the simile is that of a pearl necklace; just as a hole in a pearl is made by piercing it with a fine instrument, similarly in this case, it is उन्मीलन्मतियन्त्र i. e. blossoming imagination. The other aspect of the simile is obvious.

× × × × ×

At the end of the Ms., we find two s'lokas in the स्रग्धरा metre. The first s'loka describes the Nāgara women of Vadanagar carrying home water-jars from the lake (which still exists and is known by the name of शर्मिष्ठा).

In this s'loka two words deserve notice-(1) चुञ्चुकं which is a sanskritized form of the des'ya word चुञ्चुओ meaning शेखर i e. a garland for the head (see देशीनाममाला iii. 16. B. S. Series); (2) चील-not given in Sanskrit lexicons, appears to be a des'ya word. Hemacandra gives the word चिलिच्चीलं in the sense of आर्द्र wet. Sir Monier-Williams gives चीलिका and चील्लका (f.)= =चीरीवाक meaning the hem of an under garment. The meaning here may be a wet under garment. The other meanings of चील=चीर that would be appropriate in this context are (i) a necklace of four pearl strings, (ii) a crest (चूडा). It is difficult to say exactly what is intended here.

In the second s'loka, a milkmaid is described as surpassing in beauty, the divine damsel घृताची. In this s'loka the word वत्सोवाली is to be noted. To understand the meaning of this word we have to compare the following Prakrit word-वच्छवाल or वच्छवाली meaning गोप or गोपी-a cowherdess (पाइअ-सद्दमहण्णवो, page 917).

Compare also the following des'ya word—

वच्छीवो-गोपः-a cowherd [from वत्सीय]

(दे. ना. vii. 41-B. S. Series)



राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रकाशित ग्रन्थ

१ प्रमाणमञ्जरी – तार्किकचूडामणि सर्वदेव। २ यन्त्रराजरचना – महाराजाधिराज जयसिंहदेव कारिता। ३ कान्हडदे प्रबन्ध – महाकवि पद्मनाभ। ४ क्यामखांरासा – नवाब अलफखां (कविवर जान)। ५ लावारासा – चारण कविया गोपालदान। ६ महर्षिकुलवैभवम् – विद्यावाचस्पति स्व. श्री मधुसूदनजी ओझा। ७ वृत्तिदीपिका – मौनि कृष्णभट्ट। ८ राजविनोद काव्य – कवि उदयराज। ९ तर्कसंग्रहफक्किका – क्षमाकल्याणगणी। १० नृत्तसंग्रह – अज्ञातकर्तृक। ११ शृंगारहारावलि – हर्षकवि।

प्रेस में

१ त्रिपुराभारतीलघुस्तव – सिद्धसारस्वत लघुपण्डित। २ बालशिक्षा व्याकरण – ठक्कुर संग्रामसिंह। ३ करुणामृतप्रपा – महाकवि ठक्कुर सोमेश्वरदेव। ४ पदार्थरत्नमञ्जूषा – पं. कृष्णमिश्र। ५ शकुनप्रदीप – पं. लावण्यशर्मा। ६ उक्तिरत्नाकर – पं. साधुसुन्दर गणी। ७ प्राकृतानन्द – पं. रघुनाथ कवि। ८ ईश्वरविलासकाव्य – पं. कृष्णभट्ट। ९ चक्रपाणिविजयकाव्य – पं. लक्ष्मीधर भट्ट। १० काव्यप्रकाश – भट्ट सोमेश्वर। ११ कारकसंबन्धोद्योत – पं. रभसनन्दी। १२ कृष्णगीतिकाव्यानि – कवि सोमनाथ। १३ नृत्यरत्न कोश – महाराजाधिराज कुंभकर्णदेव। १४ नन्दोपाख्यान – अज्ञातकर्तृक। १५ चान्द्रव्याकरण – चन्द्रगोमी। १६ शब्दरत्नप्रदीप – अज्ञातकर्तृक। १७ रत्नकोश – अज्ञातकर्तृक। १८ कविकौस्तुभ – पं. रघुनाथ मनोहर। १९ एकाक्षरकोशसंग्रह – विविधकविकर्तृक। २० शतकत्रयम् – भर्तृहरि, धनसारकृत व्याख्यायुक्त। २१ वसन्तविलास – अज्ञातकर्तृक। २२ दुर्गापुष्पाञ्जलि – म. म. पं. दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २३ दशकण्ठवधम् – म. म. पं. दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २४ गोरा बादल पदमिणी चऊपइ – कवि हेमरतन। २५ बांकीदासरी ख्यात – महाकवि बांकीदास। २६ मुंहता नैणसीरी ख्यात – मुंहता नेणसी इत्यादि।

प्राप्तिस्थान – सञ्चालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर।